भोजन का अधिकार अभियान सहयोगी समूह, मध्यप्रदेश

ई–7/226, प्रथम तल, (धनवन्तरी काम्पलेक्स के सामने) अरेरा कालोनी, शाहपुरा, भोपाल, फोन : 0755–5252789
ई मेल : rtfmp@rediffmail.com

दिनांक 5 मई 2006

प्रिय साथियों,

इस बार का भोजन का अधिकार यह संवाद पत्र दो खास बिन्दुओं पर केन्द्रित है। पहला बिन्दु है राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना और दूसरा बिन्दु है प्रदेष के अलग–अलग इलाकों में गंभीर होती जा रही कुपोषण की स्थिति। ये दोनों बिन्दु एक दूसरे के साथ सघन रूप से जुड़े हुये हैं। रोजगार गारण्टी योजना अपने आप में हमें व्यापक स्तर पर न केवल विकास की अपनी परिभाषा को क्रियान्वित करने के अवसर प्रदान करती है बल्कि सामाजिक अंकेक्षण, पारदर्षिता और जवाबदेहिता के लिये भी वातावरण बनाने में मदद कर सकती है। अतः जरूरी है कि हम अपने–अपने क्षेत्रों में इस पर सघन निगरानी रखें और आवाज बुलंद करें।

वहीं दूसरी ओर बच्चों की खाद्य सुरक्षा का मुद्दा भी एक अहम् विषय अब बना है। मसला केवल पोषण आहार के वितरण तक सीमित नहीं है बल्कि व्यापक शारीरिक–मानसिक विकास के लिये जरूरी पोषण के अधिकार से जुड़ा हुआ है। हम भलि–भांति महसूस कर रहे हैं कि राज्य औपचारिक रूप से प्रयास करके कुपोषण की गंभीरता को हल्का करने की कोषिष कर रहा है। यहां तक कि कुछ पत्रकार बुद्धिजीवी साथी भी इसे विकास में बाधा उत्पन्न करने वाले नकारात्मक मुद्दे के रूप में परिभाषित करने लगे हैं।

अतः जरूरी है कि इस मुद्दे की गंभीरता को स्थापित करने के लिये जरूरी पहल की जाये।

सचिन कुमार जैन
भोजन का अधिकार अभियान, म.प्र.

सहयोगी समूह

राघवेन्द्र सिंह, (म. प्र. जन अधिकार मंच, ग्वालियर), नीलेष देसाई (सम्पर्क, झाबुआ), उमेष वषिष्ठ (भूख एवं भय से मुक्ति का संघर्ष), सीमा–प्रकाष (स्पंदन), डॉ. मुन्नालाल कुरैचया (समहित विकास समिति), उमा चतुर्वेदी (सहयोग– सपोर्ट इन डवलपमेन्ट), सचिन कुमार जैन (विकास संवाद, भोपाल), श्रीरंग धवले (भोपाल), संदीप नाईक (भोपाल), राघवेंद्र (जबलपुर), प्रषांत दुबे, अमीन चार्ल्स

रोजगार गारंटी योजना में चुनौतियां

• अविनाश झाड़े

मजदूर पेशा प्रत्येक परिवार को वर्ष में 100 दिन का रोजगार अवसर सरकार द्वारा उपलब्ध कराये जाने का कानूनी प्रावधान किया जाना, भारतीय लोकतंत्र की गरीबों के प्रति गहन प्रतिबद्धता एवं प्रत्येक मजदूर परिवार के गरिमामय जीवन की गांरटी दिये जाने का ठोस उदाहरण हैं। भारत सरकार ने रोजगार गारंटी कानून बनाकर गरीब परिवारों की अन्न–सुरक्षा का न केवल प्रबंध किया बल्कि मानवाधिकारों के संरक्षण की दिशा में ऐतिहासिक कदम उठाया है। इस कदम के बाद हमारा राष्ट्र दुनिया के एक मात्र देश के रूप मे पहचान रखता है जहां देश के किसी भी नागरिक को जिंदा रहने के लिए न्यूनतम खाद्यान्न जुटाने के लिये सरकार द्वारा रोजगार अवसर सृजित किये जाते हैं।

भारत की 70 फीसदी आबादी चूंकि ग्रामीण इलाकों में बसी है इसलिए रोजगार गारंटी योजना के तहत कराये जाने वाले रोजगार मूलक कार्य गांवों में अधिक होंगे जिससे गांवों की दशा तेजी से बदल सकती है। प्रतिवर्ष 100 दिनों के लिए चलने वाले रोजगार मूलक कार्य जंगल, खेत, सड़क, चारागाह या बंजर भूमि पर ही होंगे जिससे गांव के संसाधन दिन–प्रतिदिन सुदृढ़ होते जावेंगे। रोजगार मूलक कार्य सार्वजनिक भूमि के अलावा अनुसूचित जाति व जनजाति की नीजि भूमि पर भी कराये जा सकते है। परिणामतः गांवों की आत्मनिर्भरता बढ़ती जावेगी।

भूमि व जल प्रबंधन के लिए भारत सरकार संचालित हरियाली कार्यक्रम की मानक दर 6 हजार रूपये प्रति हेक्टेयर है जिससे भूमि उपचार एवं जल–संरक्षण व संवर्धन तथा वनीकरण का कार्य कराया जा सकता हैं। 100 दिन के रोजगार की गारंटी मिलने के बाद अब पूरे विश्वास से कहा जा सकता है कि 100 परिवार की आबादी वाले प्रत्येक गांव मे हर–साल कम से कम 100 हेक्टेयर जमीन उपचारित हो सकती है। गांव में बनाई गई संरचनाओं के रख–रखाव के लिए भी पश्चातवर्ती वर्षों में प्रतिवर्ष कम से कम 580000 रूपया गांव में उपलब्ध रहेगा। इन रूपयों से शेष भूमि का उपचार एवं पुरानी संरचनाओं का बेहतर रखरखाव आसानी से हो सकता है।

बतौर निष्कर्ष यह कहा जा सकता है कि रोजगार गारंटी योजना के क्रियान्वयन से प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन की सुनिश्चितता बन गई है। ग्राम पंचायतों को इतनी भर तैयारी करना होगी कि वे आने वाले 5–10 साल में क्या कुछ करना चाहते हैं। 5 या 10 सालाना योजना बनाना जरूरी है। योजना नियोजन के लिए पंचायतों को तकनीकी मदद की आवश्यकता होगी एवं मदद के बारे में सरकारी व्यवस्था की जानी चाहिए।

आज हम गर्व के साथ कह सकते हैं कि भारतवर्ष ने अपने देश से गरीबी भगाने की गंभीर मुहिम छेड़ दी है एवं आने वाला कल खुशहाल होगा।

चुनौतियां

1. सरकार एक साथ पूरे देश में योजना लागू नही कर सकी है जिस पर सरकार को सोचना हैं एवं व्यस्था करना है।
2. इस योजना के तहत कराये जाने वाले कार्य गुणवत्तापूर्ण हो पाये इस हेतु पंचायतों का तकनीकी मार्गदर्शन एवं निगहवानी की समुचित व्यवस्था बनाना।
3. मजदूरों का पंजीयन, पंजीकृत परिवार के प्रत्येक वयस्क को जाब कार्ड बनाकर देना एवं रोजगार अवसर पाने हेतु आवश्यक आवेदनों पर समयबद्ध कार्यवाही कर पाना पंचायतों के लिए कठिन कार्य है क्योंकि पंचायत में एकमात्र कर्मचारी सी.ई.ओ. है जो अकेला इन कार्यो को नही देख सकेगा परिणामतः मजदूरों को बेरोजगारी भत्ता देना होगा जो सरकारी धन का अपव्यय कहलायेगा एवं योजना की भावना की पूर्ति अधूरी रहेगी।

4. आज ग्राम पंचायतों के कार्यालय नहीं है जिससे पंजीयन आवेदन जमा करने रोजगार आवेदन की पावती अर्जित करने में काफी दिक्कतें आयेगी। मजदूर भटकते रह सकते है क्योंकि पंचायत सी.ई.ओ./सचिव को रोजगार गांरटी योजना के अतिरिक्त बहुत से काम देखने होते है। जरूरी हो जाता है कि प्रत्येक पंचायत में एक सहयोगी/लिपिक की व्यवस्था की जाय।
5. मजदूरी भुगतान भी अहम समस्या रहेगी क्योंकि सचिव के पास इस योजना के अलावा अन्य कई योजनाएं एवं समन्वय की जिम्मेवारी भी हैं जबकि उसे प्रत्येक मजदूर को अलग–अलग दिनों में काम पर लगाना होगा एवं उसी क्रम में सप्ताह अंत पर या अधिकतम 15 दिन के पूर्व मजदूरी भुगतान भी करना होगा। बिना सहायक के इस काम में दिन प्रतिदिन विवादों को जन्म मिलेगा।
6. पंचायतों की सूक्ष्म योजना बनाने का काम ठीक तरह कराना जरूरी है जिसमें पंचायत क्षेत्र की प्रत्येक ग्रामसभा स्तर पर गहन नियोजन किया गया हो एवं सबको मिलाकर पंचायत की योजना को अंतिम रूप दिया गया हो।

उपरोक्त चुनौतियों पर अभी ध्यान दिया जाना आवश्यक है। सभी बिंदुओं पर ध्यान दिये जाने से रोजगार गारंटी योजना का प्रभावी कियान्वयन हो सकेगा।

कानून में, कागज पर गारंटी रोजगार की ।
करो साकार, अब बात काम के अधिकार की ।।

एक लंबे जन संघर्ष के बाद आखिकार 23 अगस्त 2005 को भारतीय संसद ने ग्रामीण रोजगार गारंटी कानून पारित कर दिया। इस विधेयक का पारित होना जनसंघर्षो की एक बड़ी जीत दर्शाता है क्योंकि काम का अधिकार भारतीय संविधान के अनुछेच्द 21 में दिये गये ''गरिमा के साथ जीवन जीने के अधिकार '' की पूर्वशर्त है। संविधान के अनुछेच्द 41 में भी देश के प्रत्येक नागरिक को '' काम के अधिकार'' की बात की गई है जो कि यह साबित करता है कि यह हमारा आधारभूत अधिकार है। संसद द्वारा पारित कानून निश्चित रूप से हमारी अपेक्षाओं से काफी कम है फिर भी सामाजिक, राजनैतिक अधिकारों से आगे बढ़कर आर्थिक अधिकारों को हासिल करने की दिशा में यह एक बड़ा कदम है। साथ ही उस रूप में जब सरकार अन्तर्राष्ट्रीय वित्त संस्थानों जैसे आई.एम.एफ. और विश्व बैंक के दबाव में सामाजिक विकास कल्याण के दायित्व से लगातार पीछे हट रही है यह जीत काफी महत्वपूर्ण हो जाती है। इस कानून में दी गई 'गारंटी' 'काम के अधिकार' की लड़ाई की दिशा में एक ठोस पहल होने के साथ–साथ 'कल्याणकारी राज्य' की संकल्पना को वापस लाने की पूर्वपीठिका भी है।

इस कानून के मुख्य बिन्दु निम्नवत हैं –

1. भारत के 200 सर्वाधिक पिछड़े जिलों में तुरंत रोजगार गारंटी कानून लागू होगा और शेष जिलों में समयबद्ध तरीके से विस्तारित होगा।

2. इस कानून के तहत प्रत्येक परिवार के कम से कम एक सदस्य को राज्य में लागू न्यूनतम अकुशल मजदूरी के आधार पर काम उपलब्ध कराना सरकार के लिए अनिवार्य होगा।

3. काम 15 दिनों के भीतर और उसी ग्राम में अन्यथा 5 किमी. के दायरे के अंदर उपलब्ध कराना होगा। 5 किमी. के दायरे के बाहर होने पर श्रमिक को यात्रा किराया और अन्य खर्चे हेतु मजदूरी

का 10 प्रतिशत अतिरिक्त भुगतान करना होगा।

4. 15 दिनों के भीतर काम उपलब्ध कराने में असफल रहने पर श्रमिक को न्यूनतम मजदूरी का कम से कम एक चौथाई शुरू के तीस दिनों के लिए और उसके बाद आधा देना होगा।

5. इन कामों के तहत विकास सबन्धित कार्य जैसे – जल संचयन व संग्रहण, भूमिसुधार कार्य, अकाल से बचाव के कार्य, बाढ़ नियत्रंण कार्य, सड़क निर्माण, आदि काम जो ग्राम सभा की बैठकों में आम सहमति या प्राथमिकता के आधार पर तय किये जायेगें शामिल होगें।

6. एक बार लागू होने के बाद इस कानून को संबंधित जिले से वापस नहीं लिया जा सकेगा।

हमारा विश्वास है ग्रामीण रोजगार गांरटी कानून न केवल ग्रामीण श्रमिकों का शहरों की तरफ पलायन रोकेगा, वरन वर्तमान मजदूरों की दरों को ऊपर उठाने में भी भूमिका निभायेगा। इसमें ग्रामीण अकुशल श्रमिकों का जीवन स्तर ऊपर उठने के साथ–साथ उनकी गरिमा में भी वृद्धि होगी। हम आप से अपील करते है कि मजदूर वर्ग के हितों पर वैश्वीकरण और निजीकरण के हमलों के दौर में हासिल की गई इस जीत में हमारे साथ आए। साथ ही इस कानून को जमीन पर उतारते हुए अपना मुख्य संघर्ष जो काम के अधिकार के लिए है, को सशक्त बनाये। एक सशक्त लोकतन्त्र के लिए पहली शर्त है हर हाथ को काम और काम का पूरा दाम यानि काम के अधिकार की बहाली।

पहले यानी इस वर्ष मध्यप्रदेष के 20 जिले राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना में शामिल किये गये हैं। और इस योजना के परिप्रेक्ष्य में राज्य सरकार ने गांवों के स्तर पर जॉब कार्ड बनाने की प्रक्रिया शुरू कर दी है। अब हमें यह सुनिष्चित करना है कि गांवों के सभी जरूरतमंद और इच्छुक परिवारों के नाम इस सूची में दज हो जायें और उनके कार्ड बन जायें। यह कार्ड पंचायत के स्तर पर बनाये जा रहे हैं और इन कार्डों के निर्माण या फोटो के लिये लोगों को किसी भी तरह के शुल्क का भुगतान नहीं करना है। यहां देखना जरूरी है कि लोगों को भ्रष्टाचार से बचाया जा सकें।

इसके साथ ही यह तय है कि रोजगार गारण्टी योजना का बेहतर क्रियान्वयन आम व्यक्ति पंचायत और ग्रामसभा की सक्रियता से ही संभव है। लोग रोजगार के लिये जितना जदा मांग करेंगे या जितना ज्यादा पंजीयन करायेंगे, सरकार को भी उतना ही सक्रिय और जवाबदेय होना पड़ेगा। अब रोजगार हासिल करना व्यक्ति का कानूनी हक है और रोजगार की मांग पूरी करना राज्य की जवाबदारी है।

विस्थापन का दंश
बनाम
अस्तित्व का संकट

(सूखी सेवनिया के अमानवीय प्रयोग की दास्ताँ)

प्रशान्त कुमार दुबे – कार्ट (निवसीड)

तसल्लियों के इतने साल बाद, अपने हाल पर
निगाह ड़ाल, सोच और सोच कर सवाल कर
कहाँ गये वो वायदे, सुखों के ख्वाब क्या हुये
तुझे था जिनका इंतजार, वो जवाब क्या हुये
तू उनकी झूठी बात पर ना और एतबार कर
कि तुझको साँस–साँस का, सही हिसाब चाहिये
घिरे हैं हम सवाल से, हमें जवाब चाहिये।

— शलभ श्री रामसिंह

प्रस्तावना –

भूख और अस्तित्व का संघर्ष हर बार एक नई कड़ी के साथ अपने विकराल रूप में नजर आता है और हर बार यह नई कड़ी इस अस्तित्वमान धारावाहिक को जीवित रखने में मददगार सिद्ध होती है । मजेदार यह है कि इस धारावाहिक का अगला पड़ाव ना तो निर्माता जानता है और ना ही निर्देषक ? तय है तो महज इतना कि हर बार चरित्र को ही अपनी कुर्बानी देना है।

गौर करने लायक बात यहाँ यह भी है कि हर बार हर नई कड़ी किसी ना किसी कहावत का बिगड़ा स्वरूप ही है। इस बार की कहानी शुरू करेंगे इस कहावत से जो कि इस रूप में प्रचलन में है कि 'दाल में कुछ काला है'। यह कहावत किसी भी अस्तित्वमान प्रसंग में तनिक गड़बड़ियों की ओर इषारा करती है और इसे रोजमर्रा की जिंदगी में आटे में नमक मिलाने जैसी स्थितियों से सुपरिभाषित किया जा सकता है।

यहाँ चिंताजनक यह है कि आदम के प्रगैतिहासिक युग के साथ यह व्यवस्था वर्तमान में लगभग आदर्ष सी व्यवस्था के रूप में जानी जाने लगी है और इन बदली परिस्थितियों में नवपीढ़ी ने इन्हें पालने पोसने का कार्य भी अपने हाथ में ले लिया है।

हमने आजादी की रजत जयंती मना ली और सोचिये कि आज भी एक बहुत बड़ी आबादी को यह तय करने का अधिकार भी नहीं है कि वह कैसे और कहाँ रहे? उसके आसपास क्या हो या क्या ना हो? भूमंड़लीकरण हो या फिर हरित क्रांति ऐसी कई परस्पर संबंधित प्रक्रियाओं का प्रत्यक्ष परिणाम है गाँवों से शहरों की ओर पलायन। ये पलायन अभी तो और बढ़ेगा क्योंकि यह तो सरकारी गलत नीतियों का प्रतिफल है।

'एक तो करेला और ऊपर नीम चढ़ा' कहावत भी आपने खूब पढ़ी–सुनी होगी, यह कहावत किसी भी बिगड़ी तस्वीर का और बिगड़ा रूख हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। तस्वीर के इस बदले रूख की पराकाष्ठा को कुछ उदाहरणों के साथ समझने पर हमारा संवाद सही राह पकड़ पायेगा। आइये चलते हैं भोपाल की झुग्गी बस्ती सूखी सेवनिया जहाँ सरकार का विस्थापन बनाम व्यवस्थापन के पीछे छिपा कथित जनहित का राग दम जोड़ता नजर आ रहा है।

संक्षिप्त इतिहास

दिसंबर 2004 की कड़कड़ाती ठंड में भोपाल रेल्वे स्टेषन के समीप रेलवे की बी–केबिन तथा ए–केबिन के पास पटरियों के किनारे पिछले पैंतीस वर्षों से निवासरत लगभग 300 परिवारों को हटा दिया गया। हटाये जाने की भी चरणबद्ध प्रक्रिया यह थी कि पहले तो नवरात्रि के दौरान अक्टोबर माह में अचानक ही झुग्गियों को तोड़ने की कवायद शुरू कर दी गई तथा फिर मानवीयता के घड़ियाली आँसू बहाते हुये नगरनिगम तथा रेल्वे के लोगों ने दो माह की मोहलत दी।

ये जायेंगे कहाँ ? करेंगे क्या ? इसकी सोचने की फिक्र किसी को नहीं थी तब बस्ती के ही कुछ नौजवान साथियों ने संघर्ष किया और तब जाकर यह तय हुआ कि बस्तियाँ जायेंगी सूखी सेवनिया। यानि अपने वर्तमान निवास से लगभग 15 कि.मी. दूर। इसे ही नियति मान कर नगर निगम के ट्रकों पर लद कर चल पड़ा काफिला सूखी सेवनिया की ओर। कुछ साथ चले और किसी ने आसपास ही सर छिपा लिया। अपनों से बिछड़ने का दुःख या अपने आषियानों को छोड़ने की पीड़ा, अपने इष्टों को छोड़ने का दर्द और अनायास सा भय, खुषवन्त सिंह की भाषा में कहें तो यह शीर्षक होता 'ट्रक टू सूखीसेवनिया'।

वायदों की खैरात बनाम अधिकारों का पंचनामा

तेरे वायदों पर अब मुझे, ऐतबार ना रहा।
कमबख़्त रोज बदलता है, अपने वायदों की तारीख।।

रूठी प्रेमिका की मानिंद ही समुदाय के लाग भी सरकार की वायदाखिलाफी से नाराज हैं। विस्थापन के समय यह कहा गया था कि प्रत्येक परिवार को 450 वर्गफीट का प्लॉट, 1200 रूपया मुआवजा राषि तथा बाँस–बल्ली दी जायेंगी, वहाँ पानी होगा, बिजली होगी और सारी सुविधायें दी जायेंगी। पर मिला क्या ? दो दिन तक परिवारों को पूड़ी–सब्जी के पैकेट और आठ दिन तक नगर निगम के टैंकर द्वारा पानी का वितरण और एक 450 वर्गफीट का प्लॉट । फिर आज–कल की राह तकते जीवन संघर्ष कड़ा हो गया और नियति ने ही अपना ड़ेरा ड़ाला। शासन द्वारा दी जा रही खैरात के मसले पर भाग्य ने समुदाय का साथ ना दिया। माफ करिये, यहाँ 'भाग्य'

शब्द का प्रयोग इसलिये किया गया है क्योंकि संदर्भित अधिकारों की भाषा भद्दा मजाक सिद्ध हो सकती है।

> ब लोगों को जबरन हटाया जाता है तो उत्पादन व्यवस्था नष्ट म बस्तियां नष्ट हो जाती हैं परिसंपतियां योग, खाद्य स्व हस्तांतरण, श्रम के आदान –प्रदान ओर बुनियादी क ढांचे जाते हैं। स्वास्थ्य सुविधाओं में ें के बीज का स्तव्यस्त हो यों के अचानक अलग–अलग दिषाओं में बिखर जाने ेर औपचारिक व अनौपचारिक जुडाव नेतृत्वविहीन चिन्हों को जुड़ाव टूट जाती है। ये ैं या जिन्हें मापा ेल कल्पना नहीं, बल्कि यथार्थ हैं। इनका अर्थवयवस्था
> बैंकवाइड रिव्यू ऑफ ंग डिस्प्लेसमेंट, 1986–93,प्र्यावरण विभाग, 8

रोजी रोटी का संघर्ष और सूखी सेवनिया

पहले निवास से महज आधा किलोमीटर के दायरे में ही काम मिल जाता था, पुरूष वर्ग सब्जी मंडी व रेल्वे माल गोदाम में हम्माली, निर्माण मजदूरी, कबाड़ का धंधा तथा शादी समारोहों में खाना बनो तथ्रा बत्ती उठाने का काम करते था जबकि महिलायें आस–पास के घरों में झाडू लगाने तथा बत्ती लगाने के कार्य करती थीं। इन कार्यों में महिला–पुरूषों को क्रमषः 150– 200 रूपया मिल जाते थे।

अब यहाँ पर महिलाओं के लिये कोई काम नहीं हैं, पुरूष वर्ग भी काम करने को वहीं लौटता है लकिन अब लगता है एक दिन का 18 रूपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन (मिनी बस) और ऊपर से काम ना मिला तो बैरंग वापस। रेल से जाने पर 10 रूपये लगता है और कहीं टिकिट ना ले पाये और पकड़ा गये तो 50–100 रूपया यानि उस दिन की मजदूरी की बलि चढ़ना तय ।

अस्तित्व का संकट

अब ना तो वे नगरनिगम की सीमा मे हैं और ना ही पंचायत उन्हें स्वीकार करने को तैयार है। तो अब ये हैं कहाँ ? यह अस्तित्व का सवाल होते हुये भी एक गंभीर मसला है। सूखी सेवनिया के उपसरपंच मदन सिंह जी कहते हैं कि हम तो केवल मानवीयता के नाते इनकी मदद कर रहे हैं बाकी हमारी पंचायत के पास इनके व्यवस्थापन संबंधी कोई भी लिखित आदेष नहीं है। ना तो इनके नाम वोटर लिस्ट में ही आये हैं और नाही इनके राषन कार्ड़ जारी किये गये हैं।

मूलभूत सुविधायें और सूखी सेवनिया

आपको पेयजल चाहिये आपको 3 कि.मीटर दूर कोयला खदान तक जाना होगा, निस्तार का पानी चाहिये आधा किलोमीटर दूर सूखी ग्राम से लाइये । विस्थापन के समय एक बोरिंग अवष्य किया गया था परन्तु विद्युत के अभाव में वह भी नहीं चालू हुआ। बस्ती से महज 300 मीटर की दूरी पर पावर हाऊस होने के बाद भी बस्ती में विद्युत व्यवस्था नहीं है। 20 रूपया प्रतिलीटर की दर के केरोसिन से रौषन होती हैं ये झुग्गियाँ। शौच खुले मे ही जाना होगा, जरा सीमा पार की तो आरपीएफ के जवान डंड़ा फेंक कर मारते हैं । पुनः हटा दिये जाने के ड़र से, क्योंकि अभी तक पट्टा नहीं मिला है लोगों ने अपने आसरों को आकार देना शुरू नहीं किया है। अर्थात् रोटी नहीं,, बिजली नहीं,, पानी नहीं,, आसरा नहीं, ... ?

पर्याप्त आवास के मानदंड

आर्थिक, सामाजिक, अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र संघ के अंतर्राष्ट्रीय प्रतिज्ञा पत्र के अनुसार

1. स्थाई निवास हेतु कानूनी सुरक्षा
और एक वंष के लोग बिखर जाते हैं। रोजगार व समाप्त हो जाती हैं। बच्चों की देखभाल में परस्पर सहसुरक्षा, राजजो कि बलपूर्वक बेदखली,, प्रताड़ना और ऐसी अन्य धमकियों के विरूद्ध एक कानूनी सुरखा सुनिष्चित कराती है।
सामाजिक–आर्थिक सहयोग के स्त्रोत अनौपचारिक सामाजिलोगों के बिखराव के कारण टूट

2. सेवाओं, सामग्रियों,सुविधाओं, एवं अधोसंरचनाओं की उपलबधता
गिरावट आ जाती हैं। उत्पादकों और उनके उपभोक्ताआसंपर्क प्रायः टूट जाता हैं और स्थानीय श्रम बाजार अजाता है। सदस्स्वास्थ्य, सुरक्षा, आराम की कुछ मूलभूत सुविधाओं की उपलब्धता तथा पीने का पानी,, बिजली की सुविधा होनी चाहिये।
के कारण स्थानीय संगठन अ

3. टिकाऊ आवास व्यवस्था
टूट जाते हैं। पारंपरिक प्राद्यिकार और प्रबंध व्यवस्थायें हो जाती हैं। पैतृक पूजास्थल व कब्रिस्तान जैसे प्रतीकछोड़ देना पड़ता है जिससे अतीत के साथ लोगों का जाता है और लोगों की सांस्कृतिक पहचान खतरे में पड़ प्रक्रियाऐं जो कि हमेषा नजरों में नहीं आ पाती हआवास संबंधी खर्चे आय के स्तर से मेलखाये और टिकाऊ आवास व्यवस्था इत्यादि सुविधायें जिनकी पहुँच के भीतर ना हो ऐसे लोगों के लिये आवास सब्सिडी एवे वित्त व्यवस्थायों उपलब्ध कराई जायें।

4. रहवास हेतु उपयुक्त
संचित प्रभाव यह होता है कि सामाजिक ढाँचा और बिखर जाती है। विष्व बैंक, रिसेटलमेंट एण्ड डेवलपमेंट, दी रहवासियों को निवास के स्थल समुचित जगह उपलब्ध करायें एवं उन्हें बीमारी, प्राकृतिक विपदाओं के भय तथा संरचनागत खतरों से सुरक्षा प्रदान करें।
प्रोजेक्टस इनवालिवि

5. पहुँच के भीतर
अप्रैल, 1994, पृ. ष्प्.प्ट आवास की व्यवस्थायें सभी वंचित समूहों जैसे कि प्राकुतिक आपदा, संवेदनषील क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की पहुँच के भीतर होना चाहिये।

6. आवास की स्थिति
निवास के स्थान ऐसी जगहों पर हों जिससे रोजगार के अवसर, स्वास्थ्य संविधाओं, स्कूल और अन्य सामाजिक सुविधाओं की आसान उपलब्धि हो सके। निवास स्थान किसी भी प्रदूषित स्थानों के आसपास नहीं बनाये जाने चाहिये।

7. सांस्कृतिक रूप से समृद्धि
आवास की नीतियाँ एवं इसकी स्वरूप रहवासियों के सांस्कृतिक पहचान एवं विभिन्नता को परिलक्षित करें।

सामाजिक सुरक्षा और सूखी सेवनिया

बस्ती के लगभग 30–35 लोगों को सामाजिक सुरक्षा पेंषन के तहत विधवा,विकलांग,निराश्रित,वृद्धावस्था पेंषन की पात्रता है लेकिन पेंषन लेने भी जाना पड़ता है पुनः भोपाल। समुदाय के वयोवृद्ध भगवान दादा कहते हैं कि अब आने–जाने का लगता है 18 रूपया और यदि उस दिन पेंषन ना मिल पाई और दूसरे दिन जाना पड़ा तो हो गये 36 रूपये अर्थात् कुल मिलाकर 150 रूपये में से 36 किराया यानि 114 रूपया और पूरा माह (3.80 रूपया प्रतिदिन) कुल मिलाकर सुरक्षा यानि असुरक्षा .... ?

खाद्य सुरक्षा योजनायें और सूखी सेवनिया

बस्ती में 0–6 वर्ष आयुवर्ग के लगभग 150 बच्चें हैं और उनमें से कई कुपोषित, किषोरी बालिकाओं, धात्री व गर्भवती माताओं की बड़ी संख्या है लेकिन आंगनवाड़ी नहीं है । राषन पिछले वर्ष से नहीं मिला है क्यूँकि राषन कार्ड़ स्थानांतरित नहीं किये गये हैं।

सर्वषिक्षा अभियान और सूखी सेवनिया

यूँ तो प्रत्येक बच्चें को षिक्षा से जोड़ने के बड़े–बड़े वायदे सरकार के हैं परन्तु जो बच्चे पहले से ही षिक्षा ग्रहण कर रहे थे उन्हें षिक्षा की मुख्यधारा से हटाकर सरकार क्या सिद्ध करना चाहती है ? आज सूखी सेवनिया में 6–14 वर्ष की उम्र के लगभग 200 बच्चे हैं, परन्तु वहाँ कोई भी शाला नहीं है। माध्यमिक स्तर की शाला सूखी ग्राम में हैं परन्तु वहाँ पहले से ही जगह की कमी है। ऐसे में बच्चे कहाँ जायें ..... ?

स्वास्थ्य सेवाओं का स्वास्थ्य और सूखी सेवनिया

यूँ तो पंचायत क्षेत्र में एक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र है परन्तु वहाँ चिकित्सक नहीं है। दो नर्स हैं परन्तु उनका भी सप्ताह में एक दिवस ही निर्धारित है। सूखी के लोग तो पंचायत में आते भी नहीं तो फिर वे कहाँ जायें ? ऐसे में उनके समक्ष एक ही विकल्प है बस्ती में मौजूद बंगाली झोला छाप डॉक्टर और जिसकी फीस है 20 रूपया प्रति मरीज। गंभीर बीमारी के लिये भोपाल आना पड़ेगा। खाद्य सुरक्षा की बिगड़ती स्थिति, रोजगार की अनुपलब्धता, स्वच्छ पेयजल की अनुपलब्धता से यहाँ बीमारियों का ग्राफ बढ़ा है और औसतन प्रति परिवार 300 रूपये तक का खर्च आने लगा है जो कि एक अतिरिक्त बोझ है।

हमें सोचना होगा.......... ?

समग्रता में देखें तो यह पूरी प्रक्रिया कई सारे सवाल खडे करती हैं और हमें विष्लेषण का अवसर प्रदान करती है। यह सीधे और सपाट शब्दों में सामाजिक बहिष्कार का एक क्रूरतम नमूना है।शहरों को सुंदर बनाने की चाहत और भू माफियाओं के दवाब ने सरकार की गरीब विरोधी मंषाओं को एक बार फिर उजागर किया है। हम एक बार फिर यह सोचने को मजबूर हैं कि बार–बार लोगों की जिन्दगियों से खिलवाड़ कब तक किया जाता रहेगा?

विष्व बैंक ने भी अपनी रिपोर्ट में इस तथ्य को स्वीकार किया हैं कि विस्थापन के साथ कई और पूरक स्थितियाँ जुड़ी होती हैं जिन्हें मापा नहीं जा सकता है। आर्थिक, सामाजिक, अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र संघ के अंर्तराष्ट्रीय प्रतिज्ञा पत्र के अनुसार, जिस पर भारत ने भी अपनी स्वीकृति की मुहर लगाई है, पर्याप्त आवास के 7 मापदंड भी सूखी सेवनिया की बदहाली पर आंसू बहा रहे हैं।

राजधानी में आज विस्थापन बनाम व्यवस्थापन एक यक्ष प्रष्न बनकर उभर रहा है। विस्थापित की जा रही बस्तियों में लोगों के पास आजीविका के अवसरों का अभाव है, और लोग वैकल्पिक प्रयासों को अपनाने पर मजबूर है। और इस अस्थिर जीवन शैली से जीवन स्तर की गुणवत्ता में कमी आती है, जो कि किसी व्यक्ति/समुदाय के समग्र विकास की दिषा में बाधक है।

सूखी सेवनिया, गांधीनगर, अकबरपुर की तरह ही राजधानी की कई और बस्तियाँ विस्थापित किये जाने के तुगलकी फरमानों का इंतजार कर रही हैं। नगरनिगम, बीडीए, नजूल व सीईए के नये झुग्गी व्यवस्थापन प्लान के अनुसार 29 करोड़ की अति महत्वाकांक्षी परियोजना ने आकार लेना शुरू कर दिया है और जिसमें भोपाल शहर की 75 बड़ी

झुग्गी बस्तियों बनाम 12000 परिवारों के विस्थापन का नियोजन किया जा रहा है।
यहाँ सवाल यह है कि जब शासन ने पूर्व में ही विस्थापित बस्तियों को ले कर अपनी भूमिका पूरी नहीं की है तो फिर नई बस्तियों के विस्थापन के विषय में सोचा भी कैसे जा सकता है?

भोजन का अधिकार अभियान

बच्चों के भोजन के अधिकार सम्मेलन का निष्कर्ष

संकल्प समेकित बाल विकास सेवा के गुणवत्ता और समता के साथ लोकव्यापीकरण पर केन्द्रित है।

हैदराबाद : बच्चों के भोजन के अधिकार पर तीन दिवसीय सम्मेलन का समापन गीतों, नारों और गंभीर संकल्प के साथ हुआ।

सेंट जोन्स रिजनल सेमिनरी में आयोजित सम्मेलन में करीब 400 से अधिक लोगों ने हिस्सा लिया और इसमें विशेषज्ञ और पहल कर्ताओं ने गभीर अंतर्क्रिया द्वारा बच्चों के पोषण और स्वास्थ्य के मुद्दों पर भावी कार्य योजना तय की। मुख्य मुद्दा है कि पहुंच बढ़ाई जाए और समेकित बाल विकास सेवा की गुणवत्ता सुधारी जाए, गुणवत्ता के साथ लोकव्यापीकरण।

समापन सत्र में संकल्प को पढ़े जाने से पहले प्रो. ज्या द्रेज जो प्रसिद्ध अर्थशास्त्री और भोजन के अधिकार पहल कर्ता भी है, याद दिलाया कि 9 अप्रैल को लिये गए संकल्प का महत्व क्या है। ''आज से ठीक 4 वर्ष पहले इसी दिन मध्यान्ह भोजन अभियान शुरू हुआ था'' उस दिन यह प्रयास किया गया था कि सुप्रीम कोर्ट के आदेशों की अवमानना के लिए सरकार को लज्जा बोध कराया जाए। बच्चों को एक सांकेतिक मध्यान्ह भोजन उपलब्ध कराया गया। ''हमें विश्वास ही नहीं था कि आज 12 करोड़ बच्चें मध्यान्ह भोजन पा रहे होगें।''

उन्होंने कहा कि उस अभियान से हमने काफी सीख ली। ''दो वर्ष पहले यह सोचना असम्भव सा था कि मध्यान्ह भोजन और रोजगार गारंटी योजना वास्तविकता बन जाएगी–अतः गुणवत्ता और समता के साथ समेकित बाल विकास सेवा भी सम्भव है। हमें पहल के सारे विकल्प का उपयोग करना चाहिए–न्यायालय में जाये, स़ड़कों पर पहल करे, मीडिया के साथ काम करे, पैरवी करे और शोध पहलों का रास्ता भी अपनायें। इस अभियान द्वारा हमने एक मत निर्माण के महत्व को समझा है– हमें समेकित बाल विकास सेवा के लिए भी यह करना है।''

सम्मेलन का संकल्प पढ़े जाने के बाद सदन से और सुझाव लिये गए ताकि संदेश को और तीखा और मजबूत बनाया जा सकें।

अपने अभिभाषण में नेशनल फडरेशन ऑफ इंडियन वूमन की अध्यक्ष एनीराजा जो भोजन के अधिकार अभियान में सक्रिय है, अपने सहयोग को दोहराते हुए सुझाव दिया कि यह महिलाओं के अधिकार के लिए संघर्ष का हिस्सा बन सकता है, विशेष रूप से आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की आवश्यकता।

नालसार की कल्पना कन्नाविरन जो जानी मानी मानव अधिकार पहल कर्ता भी है, ''स्थानीय कानून की जरूरत'' पर बल दिया और कहा कि सुप्रीम कोर्ट से न्याय ढूंढने के साथ यह भी किया जाना चाहिए। अन्यत्र क्षमता की आवश्यकता को पूरा करने के लिए समेकित बाल विकास सेवा की पहुंच पर ध्यान देना होगा क्योंकि इसमें दूरी, रक्षक आदि मुद्दे सम्मिलित है। अंत में उन्होंने सभी वर्गों के बीच एक मत निर्माण पर जोर दिया और इसके लिए संसद, समुदाय और ग्राम स्तर पर प्रातिनिधित्तव को प्रमुखता देने को कहा।

पहले दो दिन की मुख्य बाते :

उद्घाटन सत्र में ''लोगों की अर्थशास्त्री'' जयती घोष ने बताया कि हमारे देश में बच्चों के लिए कितना कम किया जा रहा है। इस निराशाजनक स्थिाति को उजागर करते हुए प्रो. घोष ने इंगित किया कि स्कूल पूर्व बच्चों में 47 प्रतिशत बच्चें कुपोषित है। ''इसलिए वे सही रूप में विकसित नहीं हो पा रहे हैं।'' ब्राजील में यह आंकडा मात्र 6 प्रतिशत है, जिम्बाबवे में यह 13 प्रतिशत है। भारत के मात्र 39 प्रतिशत बच्चे टीकाकृत है जबकि नेपाल में यह 66 प्रतिशत और बांगलादेश में यह 73 प्रतिशत है। उत्तर और पूर्व

में लिंग असमानता बरकरार है।

''यह अत्यंत आवश्यक है कि सुविधाओं को नियंत्रित किया जाए और बेहतर बनाया जाए।'' पैसा कोई समस्या नहीं है, वे मानती है। रक्षा पर किये जाने वाले विशाल व्यय की ओर ध्यान दिलाते हुये प्रो. घोष ने बताया कि एक परमाणु बम की कीमत समेकित बाल विकास सेवा के लोकव्यापीकरण के 4 बजटों को पूरा कर सकती है। वास्तव में यह राजनैतिक इच्छा का सवाल है।''

मेगसेसे पुरूष्कार प्राप्त एम.वी. फाउंडेंशन की पहलकर्ता शांता सिन्हा ने कहां कि खुशी है कि ''बाल अधिकार केन्द्र में आ रहे हैं'', प्रत्येक बच्चें के जन्म को मनाना और प्रत्येक माता को सम्मान देना जरूरी है। उनका मानना था कि समाज के सभी घटकों को सम्मिलित किया जाए। यह भी प्रयास किया जाए कि ''ज्ञान प्राप्त संभ्रात'' वर्ग भी इसे अपना मुद्दा बनाये। ''यदि सभी बच्चों को उनका अधिकार मिलेगा तो सत्ता संतुलन भी बदलेगा।''

भूखमरी और भूख के मुद्दे पर अपने अभिभाषण में राज्य स्वास्थ्य संदर्भ केन्द्र छत्तीसगढ़ के निदेशक टी. सुन्दरामन ने ''दक्षिण एशिया की समस्या'' – क्यों कम सकल घरेलू उत्पाद वाले देश भी भारत से बेहतर प्रदर्शन कर रहे हैं। उन्होंने बताया कि किस प्रकार कुपोषण बिमारी उत्पन्न करता है। और बिमारी कुपोषण का बढ़ाती है। उन्होंने बताया कि बिमारी से होने वाली अधिकत्तर मौतें वास्तव में भूखमरी से मौतें हैं।

योजना आयोग की सदस्य डॉक्टर सहिदा हमीद ने दोपहर सत्र में बातचीत की। प्रधान मंत्री मनमोहन सिंह का संदर्भ देते हुए उनहोंने कहा कि भारत का शिशुं और मातृ मृत्यु दर ''हमारे विरूद्ध काले धब्बे है'' उन्होंनें आश्वासन दिया कि बच्चों के भोजन के अधिकार की रक्षा के लिए समेकित बाल विकास सेवा मध्यान्ह भोजन योजना और मातृत्व सहायता को 11 वी योजना में विशेष ध्यान दिया जायेगा।

दूसरे दिन विभिन्न मुद्दों पर कार्यशालायें आयोजित की गई। कुछ निर्णय इस प्रकार है :

आंगनवाड़ी दिवस – यह प्रस्ताव पारित किया गया कि समुचे देश में आंगनवाड़ी दिवस मनाया जाएगा। इसका केन्द्र बाल अधिकारों और समुदाय के सभी बच्चों को सम्मिलित करने पर होगा। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और समुदाय की भागीदारी सुनिश्चित की जाएगी। यह प्रास्तावित है कि समुचे देश में 14 नवम्बर से प्ररम्भ कर एक हफ्ते तक कार्यक्रम आयोजित किये जाएगे जो 20 नवम्बर को लोकव्यापी बाल दिवस पर राष्ट्रीय आंगनवाड़ी दिवस के रूप में समापित किये जाएगें।

सूचना का अधिकार – पहले कदम के रूप में समेकित बाल विकास सेवा के तहत् प्रावधानों की सूचना हर आंगनवाड़ी केन्द्र के बाहर लगाई जावें। यह एक तरह से आंगनवाड़ी का ''विज्ञापन'' भी है। 0–6 वर्ष के बच्चों के पोषण और स्वास्थ्य के स्तर का आंकलन करने के लिए सर्वेक्षण किये जाएगे।

बाल अधिकार यात्रा – पूरे देश में भूख, अल्प पोषण और भूखमरी को नागरिक समाज समूहों के माध्यम से मिटाने के लिए जन पहलों को प्रेरित करने के लिए एक यात्रा का आयोजन जरूरी है। बच्चों पर राष्ट्रीय नीति को प्रेषित करना और समेकित बाल विकास सेवा के लोकव्यापीकरण पर कानून की पहल जरूरी है। प्रत्येक राज्य में बाल संसद होगी जो 14 नवम्बर (बाल दिवस) को दिल्ली में समापित होगी।

बच्चों के भोजन के अधिकार पर सम्मेलन
(हैदराबाद सम्मेलन 7–9 अप्रैल 2006)

समापन वक्तव्य

हैदराबाद में बच्चों के भोजन के अधिकार पर एक सम्मेलन 7–9 2006 के दौरान आयोजित किया गया। बच्चों के भोजन के अधिकार के प्रति विशेष समर्पण रखने वाले व्यक्तियों और संस्थाओं को एक मंच पर लाना इसका मुख्य उद्धेश्य था, ताकि अनुभवों का विनिमय हो सके और भावी कार्य योजना तय हो सके। समुचे भारत से करीब 400 प्रतिभागी जो इस मुद्दे पर विभिन्न रूप से काम कर रहे है, हिस्सा लिया।

समेकित बाल विकास सेवा पर संकल्प

सम्मेलन का एक मुख्य विषय 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के अधिकार जिसमें उनके भोजन, पोषण, स्वास्थय और स्कूल पूर्व शिक्षा सम्मिलित है, के संरक्षण में समेकित बाल विकास सेवा की भूमिका । कई महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर एक साझा समझ पैदा हुई। समेकित बाल विकास सेवा पर प्रारम्भिक पहल के लिए निम्न संकल्प तय किये गए –

1. 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के अधिकारों की रक्षा के लिए समेकित बाल विकास सेवा का लोकव्यापीकरण तत्काल जरूरी है। लोकव्यापीकरण का अर्थ है कि समेकित बाल विकास सेवा की सारी सुविधायें प्रत्येक 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चे, गर्भवती और धात्री महिलायें और किशोरी बालिकाओं तक पहुंचे। इसमें इन सेवाओं की गुणवत्ता में क्रांतिकारी सुधार की भी जरूरत है। अतः हमारी मांग सिर्फ लोकव्यापीकरण नहीं पर ''गुणवत्ता के साथ लोकव्यापीकरण'' है।
2. समेकित बाल विकास सेवा के लोकव्यापीकरण की प्रक्रिया में सीमांत समुदायों को प्राथमिकता देना अनिवार्य है। विशेष रूप से नए आंगनवाड़ी केन्द्रों के निर्माण में अ.जा/अ.ज.जा बसाहटों को प्राथमिकता मिलनी चाहिए।
3. ''गुणवत्ता के साथ लोकव्यापीकरण'' में कम से कम निम्न बाते होनी चाहिए :

   * आंगनवाड़ी केन्द्र के लिए जनसंख्या मापदण्ड का संशोधन होना चाहिए। संशोधित मापदण्ड को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि प्रत्येक 6 वर्ष से कम उम्र का बच्चा आंगनवाड़ी केन्द्र की सहज पहुंच में हो।

   * आंगनवाड़ी केन्द्रों के भौतिक ढ़ांचे में भी महत्वपूर्ण सुधार होने चाहिए। विशेष रूप से आंगनवाड़ी केन्द्रो का अपना पक्का भवन होना चाहिए जिसमें आकर्षक डिजाइन और पर्याप्त जगह हो। इसमें भण्डारण, पेयजल, पकाने के लिए बर्तन, खिलौने, बच्चों के लिए उपयुक्त शौचालय आदि बुनियादी सुविधायें होनी चाहिए। आंगनवाड़ियों को खुला अनुदान मिलना चाहिए ताकि स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप सेवाओं को बेहतर बनाया जा सके।

   * आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण कार्यक्रमों में बुनियादी सुधार जरूरी है। 3 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की देखरेख, पोषण परामर्श और स्कूल पूर्व शिक्षा पर विशेष प्रशिक्षण सम्मिलित होना चाहिए।

   * प्रत्येक आंगनवाड़ी में कम से कम दो आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और एक सहायिका होनी चाहिए। एक आंगनवाड़ी कार्यकर्ता 3 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की देखरेख के लिए जिम्मेदार होनी चाहिए–सबसे संवेदनशील और उपेक्षित उम्र श्रेणी।

* आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की चिंताओं और समस्याओं पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए विशेष रूप से अत्यधिक कार्य बोझ, अपर्याप्त मानदेय और अनउपयुक्त कार्य माहौल।

4. 3–6 वर्ष की उम्र वाले बच्चों को पूरक पोषण आंगनवाड़ी में ही स्थानीय वस्तुओं के उपयोग से पके हुए पोषक भोजन के रूप में दिया जाना चाहिए। 3 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को स्थानीय सामग्रीयों से निर्मित पोष्टिक घर ले जाने वाला राशन (टीएचआर) प्रदान किया जाना चाहिए। पूरक पोषण के साथ विस्तृत पोषण परामर्श और गृह आधारित पहल किये जाने चाहिए विशेष रूप से 3 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के लिए।
5. विकलांग बच्चों के लिए विशेष प्रावधान किये जाने चाहिए। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता द्वारा 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के लिए किये जाने वाले सर्वेक्षण में विकलांगता सर्वेक्षण भी सम्मिलित किया जाना चाहिए।
6. अन्य सीमांत बच्चों के समूहों के लिए भी विशेष प्रावधान किये जाने चाहिए जैसे फुटपाथी बच्चों और पलायन किये परिवारों के बच्चे।
7. समेकित बाल विकास सेवा का किसी भी तरह का निजीकरण नहीं होना चाहिए। निजीकरण के लिए चल रहे प्रयासों जैसे उपभोक्ता शुल्क या समुदायिक सहभागिता के नाम पर निजीकरण का विरोध किया जाना चाहिए।
8. समेकित बाल विकास सेवा से संबंधित सभी सूचनायें आम होनी चाहिए। सूचना के अधिकार कानून के प्रावधान जिसमें आवश्यक सूचनाओं को स्वतः प्रकाशित करने का प्रावधान है, पूरी निष्ठा से समेकित बाल विकास सेवा के संदर्भ में लागू किया जाना चाहिए। हर आंगनवाड़ी में सूचना पटल लगने चाहिए और समेकित बाल विकास सेवा की सुविधाओं को दिवाल पर रंगना चाहिए।
9. समेकित बाल विकास सेवा का लोकव्यापीकरण (गुणवत्ता के साथ) को समयसीमा और बजट प्रावधान के साथ 11वीं पंचवार्षिक योजना में स्थान मिलना चाहिए।
10. ''भोजन का अधिकार'' प्रकरण (पीयूसीएल बनाम भारत सरकार व अन्य, रिट याचिका 196/2001) में सुप्रीम कोर्ट के आदेशों को तत्काल सही मायने में लागू किया जाना चाहिए।

औरत को भूखे रखे जाने की जरूरत ?

सचिन कुमार जैन

एक तरफ तो 83 फीसदी महिलाओं को स्वास्थ्य सुविधायें उपलब्ध नहीं हैं वहीं दूसरी ओर यह भी एक सच्चाई है कि हमारी सामाजिक व्यवस्था में रोटी का अधिकार भी उसे उपलब्ध नहीं हैं। यह तर्क बेमानी है कि गरीबी के कारण अनाज न होने से औरत भूखी रहती है। यदि ऐसा होता तो 90 प्रतिषत महिलाएं खून की कमी की षिकार नहीं होती। वास्तविकता यह है कि वर्ग कोई सा भी हो, उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग या निम्न वर्ग; सभी वर्गों की औरतों को उनकी जरूरत के अनुरूप पोषणयुक्त पर्याप्त मात्रा में भोजन नहीं मिलता है। मध्यप्रदेष का मानव विकास प्रतिवेदन, राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के हवाले से बताता है कि प्रदेष में 20.3 फीसदी महिलायें ही हर रोज दूध या दही पाती हैं जबकि 43 फीसदी को ही दाल मिलती है। इस स्थिति में जब हम फलों पर पहुंचते हैं तो पता चलता है कि केवल 5 फीसदी महिलाओं को फल खाने को मिलते हैं। और 0.9 पतिषत को अण्डे और आधा फीसदी औरतों को मांसाहार करने का मौका मिलता है। यह आंकड़े केवल अर्थव्यवस्था की कोख से पैदा नहीं हुये हैं बल्कि सच यह है कि पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था औरत को शरीर और मन से इतना कमजोर बना देना चाहती है कि वह राजनैतिक सत्ता के लिये संघर्ष न कर सके और पुरूष का यौनिकता पर नियंत्रण बन रहे।

भरपेट रोटी का मुद्दा वैसे तो गरीबी और अमीरी के बीच में बांट दिया गया है, परन्तु यह एक सतही सिद्धान्त है कि आर्थिक संकट ही सतत् भुखमरी का कारण है। किसी भी परिस्थिति में यह नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि हमारा समाज अमीर–गरीब वर्गों में तो केवल एक निहित उद्देष्य के तहत बंटा हुआ है। यथार्थ यह है कि यह समाज औरत और पुरूष के बीच में बंटा हुआ है और यह विभाजन पितृसत्तात्मक राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक संदर्भों में एक अमानवीय व्यवस्था को स्थापित करता है। अगर भूख और गरीबी एक आर्थिक मुद्दा है तो सवाल यह है कि खेती के पूरे काम का तीन–चौथाई हिस्सा अकेले पूरा करने वाली औरत ही अब शारीरिक रूप से सबसे कमजोर क्यों है? क्यों 70 फीसदी महिलायें खून की कमी और कुपोषण की षिकार हैं?

बात अब भूमण्डलीकृत हो चुकी है। मसला केवल गरीब और अमीर के बीच का भी नहीं है, अहम् मसला औरत और मर्द के बीच का है। बहुत ही सुनियोजित ढंग से यह स्थापित कर दिया गया है कि औरत समाज में उत्पादक की भूमिका नहीं निभाती है; वह तो घर पर रहती है; उत्पादक तो पुरूष है जो घर के बाहर संघर्ष करता है, मेहनत करता है और तब जाकर कहीं घर में चूल्हा जलता है। बहुत ही व्यावसायिक चतुराई से समाज ने इस व्यवस्था को हमारे मन–मस्तिष्क का सिद्धान्त बना दिया है। हम यह विष्लेषण करने को तैयार नहीं होते हैं कि जिस बिखरे जीवन को औरत एक रूप देती है उसमें भी संघर्ष है, उसमें भी श्रम है, परन्तु उसमें औरत को अपने निर्णय लेने और चुनाव करने की स्वतंत्रता नहीं है।

वह कौषल सम्पन्न है पर वह घर की देहरी नहीं लांघ सकती क्योंकि इससे परिवार के सम्मान को ठेस लगेगी। परिवार के सम्मान को सिद्धान्त बहुत ही सोचा–समझा षडयंत्र है। इस सम्मान को बचाने के लिये उसे घूंघट में रहना होगा। घूंघट की परम्परा को निभाने के लिये उसे चाहरदीवारी में रहना होगा। चाहर दीवारी में रहकर उन्हीं दायित्वों का निर्वहन करना होगा; जो दायित्व पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने उसके लिये तय किये है। यह समाज जानता है कि उसे अवसर मिलते ही यह जोड़–घटाना भी होगा कि असलियत में उत्पादक की भूमिका निभाता कौन है? और तब पता चल जायेगा कि औरत की मौद्रिक उत्पादकता को समाज ने कर्तव्य, दायित्व, लाज, घरेलू काम, संवेदनषीलता, त्याग जैसे ही कई पदों के पीछे ढंक दिया है।

अगर सरकारी व्यवस्था पर एक नजर डाली जाये तो उसका नजरिया समझने के लिये बहुत दूर नहीं जाना पड़ेगा। जब हम सरकार की नीति के अन्तर्गत सामाजिक सुरक्षा को परिभाषित करते हैं तो स्पष्ट

होता है कि औरतों के लिये सामाजिक सुरक्षा के मायने उसके निराश्रित होने या विकलांग होने तक ही सीमित है जब उसे 150 रूपये प्रति माह की पेंषन मिलने लगती है परन्तु सामाजिक नजरिये से यह पेंषन उन्हें और अधिक वंचित और उपेक्षित कर देती है क्योंकि इस पेंषन की पात्रता के साथ ही उनकी व्यापक समाज से जुड़ी हुई पहचान पूरी तरह से खत्म हो जाती है। तात्कालिक जरूरत को पूरा करने के उद्देष्य से शुरू हुई इस तरह की योजनायें अब सामाजिक जरूरत बन गई हैं और सरकार का दावा होता है कि वह भुखमरी रोकने के जतन कर रही है।

इसके साथ ही एक पक्ष यह भी है कि तेज विकास की प्रक्रिया में स्त्री का विकास और पुरूष के विकास की परिभाषा में भी लैंगिक भेद है। जब विकास की परिभाषा में कृषि, बागवानी, ट्रेक्क्टर या इसी तरह की ठोस जरूरतों के लिये योजनाओं की बात होती है तो पूरा 100 फीसदी हिस्सा पुरूषों के खाते में ही जाता है; औरतों को सूची में रखने का 'जोखिम' न सरकारी कर्मचारी उठाना चाहता है न ही ऋण देने वाले बैंक का प्रबंधक। वहीं दूसरी ओर बहुत दबाव के बाद जब सरकार को लगने लगा कि अब औरतें भी राजनीति के चेहरे को पहचानने लगी हैं तो शुरू हो गये आय सम्वर्धन कार्यक्रम। इन कार्यक्रमों का रूप भी 'स्त्रीयोचित' ही रखा गया यानी चूंकि बात औरतों की हो रही है इसलिये सहायता मिलेगी, अचार, बड़ी, पापड़ या सिलाई, कढ़ाई के काम के लिये। मध्यप्रदेष में महिलाओं ने ऐसे में 2700 लाख रूपये इकट्ठे किये हैं, परन्तु एक भी ऐसा उदाहरण नहीं है जहां पर उन्हें खेत का अधिकार या निर्माण कार्य का ठेका मिला हो।

काम का भेदभाव भी बहुत सोच समझ के साथ किया जाता है। जिस काम में गति है, भ्रमण है, रोचकता है, वह काम पुरूष करता है। जबकि जो काम उबाऊ है, नीरस है और मेहनत वाला है वह औरतों के हिस्सों में आता है। खेती का ही उदाहरण लें। मर्द जब पानी ढोयेगा तो वह या तो ट्रेक्टर पर ढोयेगा या फिर बैलगाड़ी पर; पर जब महिला ढ़ोयेगी तो सिर पर तीन मटके रखकर पैदल चल पड़ेगी। धान की बुआई और कटाई महिला करेगी क्योंकि घुटनों–छुटनों पानी में कमर झुकाकर यह काम करना होता है, पुरूष इसी फसल को ट्रेक्टर पर लादकर मण्डी या बाजार में बेचने चल देगा।

औरत के जीवन का वह चित्र किसी भी समुदाय या प्रदेष में रंग नहीं बदलता है जिसमें उसे सबसे बाद में बचा–खुचा भोजन खाते हुये दिखाया जाता है, पोषण महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण है कि वह बासी भोजन को व्यर्थ जाने से बचायेगी। जिस सामाजिक और पारिवारिक पर्यावरण में वह रहती है, वह पर्यावरण उसके दुखदायी भविष्य की रूपरेखा तैयार करता है। पोषण, सुरक्षा, मनोरंजन और स्वतंत्रता के अभाव में एक बीमार जीवन पनपने लगता है। यही जीवन वृद्धावस्था में हर तरह से असुरक्षित होता है। प्रजनन अपने आप में प्रकृति की सबसे सार्थक और रचनात्मक विषेषता है और स्त्री उस विषेषता की वाहक है किन्तु वास्तविकता यह है कि यही विषेषता उसके लिये सबसे ज्यादा पीड़ादायक क्षण पैदा करती है। शरीर का दर्द हो चाहे मन की पीड़ा या फिर समाज की शंकायें; सब कुछ प्रजनन से ही जुड़ा हुआ है। और सच यह है कि 43 फीसदी महिलाओं का प्रसव ही प्रषिक्षित दाई करवाती हैं और 77 प्रतिषत को किसी तरह की चिकित्सा सुविधा उपलब्ध करवाने की जरूरत महसूस नहीं की जाती। हर दस हजार महिलाओं में से 54 महिलायें प्रसव के दौरान जीवन त्याग देती हैं और हर 48 में से एक महिला की मृत्यु का कारण भारत में गर्भावस्था या प्रजनन से जुड़ी समस्यायें होती हैं। माहवारी का मामला हो चाहे प्रजनन का, उसके जीवन की व्यवस्था परम्परा, मान्यताओं और रूढ़ियों से तय होती है; जिनके मानवीय होने पर बहुत बड़े सवाल हैं। यह स्थिति बहुत गंभीर है क्योंकि उसे पोषण का अधिकार नहीं है।

सशक्तिकरण के अहसास पर निजीकरण की ठोकर

स.कु.जै

मध्यप्रदेश में दलित और आदिवासी महिलाओं के सषक्तिकरण की अपेक्षा निजीकरण की प्रक्रिया को ज्यादा महत्वपूर्ण माना जाने लगा है। हाल ही में राज्य सरकार ने जनकल्याणकारी सोच वाली समेकित बाल विकास परियोजना को बाजार की आर्थिक फायदे की सोच वाली निजी व्यवस्था को सुनियोजित ढंग से सौंपने की पूरी तैयारी कर ली है। छह वर्ष की उम्र तक के बच्चों को पोषण आहार का अधिकार देकर स्वस्थ जीवन की संभावनाओं को हकीकत में बदलने की क्षमता रखने वाली इस आंगनबाड़ी योजना को एक कार्यक्रम से ज्यादा बच्चों के बुनियादी अधिकार के रूप में पहचाना गया है। इस योजना के निजीकरण से एक बार फिर यह तय है कि इसमें समुदाय और पंचायतों की भूमिका खत्म होने से भ्रष्टाचार बढ़ेगा और जवाबदेही कम होगी। बिला शक यह माना जा सकता है कि पोषण आहार की केन्द्रियकृत व्यवस्था होने से आपूर्ति पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

शुरूआती दौर में सरकार स्थानीय ठेकेदारों के जरिये इस परियोजना में पोषण आहार की आपूर्ति करवाती थी। वर्ष 2002 में यह नीति बदली गई और तय किया गया कि वंचित समुदायों की 18 हजार महिला सदस्यों वाले 750 स्वयं सहायता समूहों के जरिये पोषण आहार बनाने और आंगनबाड़ियों को भेजने का काम किया जायेगा। इससे 18 हजार परिवारों का आर्थिक–सामाजिक सषक्तिकरण भी होना था। यह नीति कागजों पर तो आई परन्तु दलित–आदिवासी महिलाओं वाले इन समूहों को लालफीताशाही और भ्रष्ट एवं अमानवीय व्यवस्था से निपटने का न तो उन्हें अनुभव था न ही क्षमता। परिणाम यह हुआ कि इन महिलाओं को अक्षम करार दिया गया।

ऐसे में हमें स्वयं सहायता समूहों की राजनीति के नजरअंदाज करने के बजाये उसे समझने की कोषिष करनी होगी। अब से दो दषक पहले विष्वबैंक ने व्यापक विष्लेषणों के बाद सुदूर ग्रामीण इलाकों तक बाजार की पहुंच सुनिष्चित करने के लिये समूह की सोच लागू करवाई थी। यह बहुत ही दूरगामी प्रयास था। आज देष में 19 लाख स्वयं सहायता समूहों का जाल बिछा हुआ है और बड़ी कम्पनियाँ गांवों तक अपने उत्पाद पहुंचाने के लिये इनका उपयोग करने लगी हैं। यह भी सही है कि समुदाय के पारम्परिक व्यवहार और गरीबी के कारण अभी बड़ी कम्पनिया का यह प्रयास सफलता से दूर ही है। हमें यह सच्चाई स्वीकार करना होगा कि स्वयं सहायता समूह कभी भी समुदाय के संगठन के रूप में उभरने नहीं दिया जायेगा। मंषा यही रही है कि समूह, सरकार के हाथ का ऐसा खिलौना रहे जरूरत पड़ने पर जिनके कान उमेठे जा सकें, हाथ मरोड़ा जा सके और समय पड़ने पर गला भी दबाया जाये तो चीख न निकले। हमेषा इन महिला समूहों से दस–बीस रूपये की ही बचत करवाई गई है और उम्मीद जगाई गई कि सरकार उनकी गरीबी मिटा देगी। बहरहाल सरकार को यह जरूर लगने लगा है कि ये समूह शायद उदारवाद के निजीकरण के एजेण्डे को लागू करने में बाधक होंगे इसलिये उन्हें असफल करार दिया जा रहा है। मध्यप्रदेष में सरकार ने बाकायदा हलफनामा देकर यह घोषणा की कि चूंकि ये समूह छोटे बच्चों के लिये सार्थक पोषण आहार नहीं बना सकते हैं इसलिये अब निजी कम्पनियों को पोषण आहार बनाने और आंगनबाड़ियों को आपूर्ति करने का एक सौ करोड़ रूपये का अधिकार दिया गया है।

सरकार ने समुदाय के समूहों को साजिष के तहत ही सहयोग उपलब्ध नहीं कराया है। और इस साजिष को हमें दो स्तरों पर देखना होगा। एक स्तर पर तो पहले पोषण आहार बनाने का कारखाना लगाने के लिये उन्हें ढाई लाख रूपये का कर्ज देकर कर्जदार बनाया और फिर पोषण आहार खरीदना बंद करके उनके सामने जीवन भर का संकट–लाद दिया। यह उम्मीदें टूटने का वक्त है। मध्यप्रदेष उच्च न्यायालय में अपने जवाब में सरकार ने बेहिचक यह स्वीकार किया कि हमारा उद्देष्य महिलाओं की आजीविका को

संरक्षित करना नहीं है। और यदि वे सक्षम नहीं हैं तो पोषण आहार आपूर्ति का अधिकार उन्हें नहीं दिया जायेगा। इसके साफ मायने हैं कि छोटे बच्चों को पालने और उपयुक्त पोषण आहार के जरिये उनका विकास करने में समुदाय अक्षम है और केवल बहुराष्ट्रीय निजी कम्पनियों के उत्पाद ही छोटे बच्चों की पोष्ण सम्बन्धी जरूरतों को पूरा कर सकते हैं। यहीं एक व्यावहारिक विसंगति यह भी है कि भारत सरकार का खाद्य एवं पोषाहार बोर्ड 80 करोड़ रूपये समुदाय और संस्थाओं को स्थानीय स्तर पर पोषण आहार बनाने का प्रषिक्षण देने के लिये व्यय करता है। यदि सरकार मानती है कि स्थानीय भोजन ही श्रेष्ठ विकल्प है तो इसे तकनीकी शब्दावली में क्यों उलझाया जा रहा है। हमें एक बार फिर 1960 के दषक पर नजर डालनी होगी जब सरकार ने मां के दूध के बजाये निजी कम्पनियों के डिब्बा बंद आहार को प्रोत्साहित किया था। फिर जब बच्चों पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ने लगा और बच्चों की मौतें होने लगीं तो मां के दूध के लिये नये कार्यक्रम चलाने पड़े। सरकार को यह सोच बदल लेना चाहिये कि समुदाय अक्षम है नही तो बच्चों की मौतों के लिये उसे ही कटघरे में खड़ा किया जायेगा।

आज की परिस्थिति का दो स्तरों पर विष्लेषण करने की जरूरत है। एक स्तर तो यह स्पष्ट करता है कि समेकित बाल विकास परियोजना विष्वबैंक की आर्थिक सहायता से चलती है और विष्वबैंक निजीकरण की व्यवस्था को बढ़ाने की प्रक्रिया में नेतृत्व संभाले हुये हैं। अतः स्वाभाविक है कि निजीकरण को रोकने का संघर्ष महिला एवं बाल विकास विभाग के साथ नहीं बल्कि अंतराष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों के साथ भी है। दूसरे स्तर पर सरकार की जवाबदेहिता और मंषा का सवाल आता है। बाजारवाद का सिद्धान्त है कि सरकार को एक दर्षक की भूमिका निभाना चाहिये और समाज के कल्याण की बात सोचने के बजाये उसे बाजार के हवाले कर देना चाहिये। इसका अर्थ यह है कि समाज के किसी भी वंचित वर्ग के जनकल्याण के लिये सरकार जिम्मेदारी नहीं लेगी। जो बाजार में अपनी क्षमता सिद्ध कर पायेगा वही जीवन का बुनियादी अधिकार पाने का हकदार होगा। सरकारी व्यवस्था चलाने वाले दोनों वर्ग, राजनैतिक नेतृत्व और नौकरषाही, भी किसी तरह से जवाबदेय नहीं होना चाहते हैं। यही कारण है कि व्यवस्था का निजीकरण करके वे न केवल जिम्मेदारी से मुक्त हो जाते हैं बल्कि अपने आर्थिक हित और भ्रष्टाचार का हक भी हासिल कर लेते हैं। मध्यप्रदेष में अब यह केवल एक विचार नहीं बल्कि एक सच्चाई है। जैसे ही सरकार ने 100 करोड़ रूपये की पोषण आहार व्यवस्था का निजीकरण करने की प्रक्रिया शुरू की, उसमें से 50 करोड़ रूपये के भ्रष्टाचार की आर्थिक अपराध अनुसंधान विंग में प्राथमिकी दर्ज हो गई क्योंकि अफसरों ने अनुभवहीन परन्तु प्रभावषाली व्यक्तियों को यह ठेका देने की तैयारी कर ली थी।

यहां सवाल यह है कि जब आधी धनराषि का शुरू में ही नोन–तेल हो गया तो बच्चों को पोषण का अधिकार किस तरह मिलेगा। मुद्दा केवल भ्रष्टाचार का ही नहीं है बल्कि केन्द्रीकृत व्यवस्था के दुखदायी अनुभवों का भी है। मध्यप्रदेष के ग्वालियर–चम्बल अंचल के आठ जिलों में सरकार ने वर्ष 2004 में मध्यप्रदेष स्टेट एग्रो कार्पोरेषन के जरिये पोषण आहार की आपूर्ति का काम शुरू किया। परन्तु यह सरकारी उपक्रम भी तकनीकी रूप से अक्षम साबित हुआ। इस अंचल के बच्चों को साल भर में केवल तीन माह पोषण आहार ही मिल पाया। यहां पर सरकार के किसी प्रतिनिधि ने अक्षमता का प्रमाण–पत्र जारी नहीं किया। इतना ही नहीं भी कोई स्वीकार करने को तैयार नहीं है कि यदि अंचल में पोषण आहार विकेन्द्रित ढंग से बंट रहा होता तो पूरे क्षेत्र पर कुपोषण का कहर नहीं ढाता।

यह केवल पोषण आहार व्यवस्था को निजी कम्पनियों को सौंपने का सतही मुद्दा नहीं है बल्कि मुद्दा यह है कि सरकार बच्चों के प्रति जवाबदेय हो या ठैकेदार कम्पनियों के प्रति। सरकार ने कम्पनियों को पोषाहार का काम देने के लिये उच्चतम न्यायालय के आदेष की अपनी जरूरत के हिसाब से व्याख्या कर ली। सरकार का तर्क है उच्चतम न्यायालय ने ठेकेदारों पर प्रतिबंध लगाया है सरकार तो निर्माताओं को शामिल कर रही है।

आज समुदाय और समुदाय से जुड़े संगठन एक ऐसे दौर से गुजर रहे हैं जहां उन्हें अपने अस्तित्व के लिय न केवल पूंजीवादी बल्कि सत्ता समर्थित सामंतवादी व्यवस्था से प्रतिस्पर्धा करना पड़ रही है। इस अवस्था में स्वाभाविक है कि उन्हें सरकार के औपचारिक कागजी सहयोग की नहीं बल्कि ऐसे नीति

आधारित समर्थन की जरूरत है जहां हर परिस्थिति में उन्हें राजनैतिक–आर्थिक प्रोत्साहन मिले। यह कह देना पर्याप्त नहीं है कि आदिवसी–दलित महिला समूहों को भी टेण्डर की प्रक्रिया में शामिल होकर सषक्त होना चाहिए। इसके बजाये राजनैतिक व्यवस्था और सरकार को सामुदायिक संगठनों के पक्ष में खड़ा होना चाहिए।

स.कु.जै

आदिवासियों का पलायन : कहां है रोजगार गांरटी ?

• सीमा और प्रकाश

मध्यप्रदेश में दिनांक 2 फरवरी 2006 को ग्रामीण रोजगार गांरटी योजना लागू की गई। देश के चुनिंदा 200 जिलों में खण्डवा जिला भी सम्मिलित है। खालवा क्षेत्र गरीबी और पलायन का शिकार रहा है। योजना लागू होने के बावजूद प्रशासन के ढीलेपन के कारण इस साल भी हजारों लोग पलायन कर गये और शोषण तथा अमानवीय परिस्थितियों का शिकार बने। प्रशासन और जनप्रतिनिधियों की इस विषय पर प्रतिक्रिया निराशाजनक रही। हमने इस संदर्भ में एक त्वरित और सघन अध्ययन किया और प्रशासन, शासन तथा सुप्रीम कोर्ट के सलाहकार/कमिश्नर को मामले से अवगत कराया । कमिश्नर एवं सलाहकार ने इस पर चिंता जाहिर की और शासन और प्रशासन से जवाब मांगा है। अध्ययन के कुछ प्रमुख आयाम निम्न प्रकार है :

प्रस्तावना

खण्डवा जिले के खालवा ब्लॉक से बड़ी तादाद में आदिवासी परिवार प्रतिवर्ष मार्च और अप्रेल के दौरान पड़ोसी जिलों में विशेषतः हरदा और होशंगाबाद में पलायन करते हैं। स्थानीय भाषा में इसे ''चैत'' कहां जाता है। पलायन की प्रवृत्ति बढ़ रही है और अब परिवार बच्चों और यहां तक जानवरों के साथ भी पलायन करने लगे हैं। राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना फरवरी 2006 को मध्यप्रदेश में इस मूल उद्धेश्य से लागू की गई कि पलायन पर अंकुश लगे और अपने गांव में ही रोजगार उपलब्ध हो सके। परन्तु जिला प्रशासन प्रभावशाली प्रयासों के अभाव में पलायन पर नियंत्रण नहीं कर पाया परिणाम स्वरूप रोजगार की तलाश में सैकड़ों लोग पलायन के बाध्य हो गये। जब मुद्दा उठाया गया तो जन प्रतिनिधियों और प्रशासन की प्रतिक्रिया उत्साह वर्धक नहीं थी। हम अपने पक्ष पर अड़िग है कि रोजगार गारंटी होने के बावजूद ये सीमांत परिवार काम का अधिकार प्राप्त नही कर सके।

पलायन का सामाजिक–आर्थिक जीवन पर दूरगामी प्रभाव पड़ता है। सबसे अधिक संवेदनशील महिला और बच्चे इससे प्रभावित होते हैं। जिस मानवीय परिस्थितियों में लोग जीते है वह उनके मानव अधिकारों का हनन है।

इसी उद्धेश्य से एक त्वरित सर्वेक्षण किया गया कि पलायन की वस्तु स्थिति को सामने लाया जा सके और इस तथ्य को स्थापित किया जा सके कि प्रशासन लोगों को उनके काम के अधिकार प्रदान करने में विफल रहा है और लोगों के मानवअधिकारों का उल्लघन हुआ है। यह रिपोर्ट पलायन की स्थिति, लोगों पर विशेष रूप से महिला और बच्चों पर इसके प्रभाव, पलायन के लिए भूख एक प्रमुख कारण और रोजगार गारंटी की उपेक्षा पर विवेचना करती है।

रिपोर्ट का उद्धेश्य यह है कि प्रशासन को पलायन की सच्चाई से अवगत कराया जा सके और लोगों को रोजगार गांरटी मुहैया न करा पाने के लिए जिम्मेदारी तय की जा सके। यह एक पहल भी है कि नीति निर्धारकों में संवेदनशीलता पैदा हो और इस महत्वाकांक्षी योजना के क्रियान्वयन में प्राथमिकता प्रदान करने और पारदर्शिता सुनिश्चित करने के पहलों को प्रेरणा मिल सके।

अध्ययन ने पलायन का वर्तमान परिदृश्य, परिवारों पर इसका प्रभाव, भूख पलायन का प्रमुख कारण, वर्तमान रोजगार और रोजगार गांरटी में भिन्नता और मानव अधिकारों के हनन के स्तर पर अपना ध्यान केन्द्रित किया।

हरदा जिले के संभावित गांवों में जहां परिवारों ने पलायन किया है वहां से सूचना एकत्र की गई। हमने पलायन पर आये परिवारों से उनके काम की जगह पर अम्बासेल, रोलगांव, मसनगांव, नालखेड़ा, मेहमदाबाद, रेहटगांव, बारंगी, पलासनेर, छिपाबढ़ और मांदला गावों में चर्चा की। कार्य स्थल पर ही करीब

100 परिवारों का साक्षात्कार लिया गया जिससे हमें ताजी सूचना और अनुभव प्राप्त हुए। हमने खण्डवा जिले में खालवा ब्लॉक के 15 गांवों से पलायन पर आये 407 मजदूरों से मुलाकात और चर्चा की। इसमें 208 पुरूष और 199 महिलायें थी। हमने 6 वर्ष से कम उम्र वाले 54 बच्चों और 39 स्कूल जाने वाले बच्चों का अवलोकन किया और उनके पोषण स्तर को जानने का प्रयास किया।

पलायन की वर्तमान स्थिति

हमने खण्डवा जिले के खालवा ब्लॉक के 15 गावों से पलायन पर आये परिवारों से मुलाकात की। ये परिवार केकड़िया, जूनापानी, चीकतलाई, डाभिया, आराखेड़ा, ढ़ोलगांव, जामन्या, चीमईपुर, उदयापुर, धामागुलाई, कुम्हार खेड़ा, करवानी, मेढ़ापानी, रणई, और खोखरिया से आये कोरकू आदिवासी समुदाय के है।

सर्वे का पुर्नअनुमान है कि पलायन दर पुरूषों मे 51.6 प्रतिशत और महिलाओं में 48.4 प्रतिशत है। इससे अनुमानित है कि करीब 2062 पुरूष और 1980 महिलाओं का पलायन संभावित है। खालवा ब्लॉक की करीब 1,30,000 की जनसंख्या जो 149 आबाद गांवों में बसती है, के आधार पर सर्वागिण पलायन दर करीब 3.01 प्रतिशत है।

परिवारों के साथ उनके बच्चे भी पलायन पर आये हैं। हमे 93 बच्चे मिले जिसमें 0–6 वर्ष वाले 54 बच्चे और स्कूल जाने वाले 39 बच्चे थे। बच्चों के पलायन का अनुमान इस प्रकार है :

- खालवा जनपद की आधिकारित जनसंख्या : 130948
- कुल आबाद गांव : 149
- 15 गांवों से पलायित सर्वेक्षित मजदूर : 407
- 15 गांवों से पलायित सर्वेक्षित पुरूष मजदूर : 208 (51 प्रतिशत)
- 15 गांवों से पलायित सर्वेक्षित महिला मजदूर : 199 (49 प्रतिशत)
- अनुमानित प्रति गांव पलायन : 27
- 149 गांवों से अनुमानित पलायन : 4042
- अनुमानित पुरूष पलायनः 2062

बच्चे भी पलायन के लिए परिवारों के साथ आये हैं। हमने 93 बच्चे पाये जिसमें 6 वर्ष से कम उम्र के 54 बच्चे और स्कूल जाने वाले 39 बच्चे थे। बच्चों के पलायन दर का अनुमान इस प्रकार है :

- 15 गावों से पलायित 6 वर्ष से कम उम्र के सर्वेक्षित बच्चे 54
- 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चों का अनुमानित प्रति गांव पलायन 3.6
- खालवा जनपद में कुल आंगनवाड़िया 270
- 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चों का अनुमानित पलायन 972
- खालवा जनपद में आंगनवाड़ी में कुल नामांकित बच्चे 14884
- 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चों का अनुमानित पलायन दर 6.53 प्रतिशत

सर्वे के दौरान हमने 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के बीच कुपोषण का स्तर जानने का प्रयास किया। 27 बच्चों के वजन और ग्रेडिंग से ज्ञात हुआ कि 37 प्रतिशत बच्चे कुपोषित है और 20 प्रतिशत गंभीर रूप से कुपोषित है।

चीक तलाई का बच्चा राजेश कालिया जिसकी उम्र 1.5 वर्ष है करीब 10 दिन पहले अपने परिवार के साथ बारंग गांव में पलायन पर आया है। आने से पहले राजेश के पिता को पता था कि राजेश का वजन 12 किलो है किन्तु इन 10 दिनों में उसका वजन 2 किलो घट चुका है। चिलचिलाती धूप में भटकने के लिए बाध्य और उपयुक्त देखरेख और पोषण के अभाव में राजेश की स्थिति और बिगड़ने की संभावना है।

हमने स्कूल जाने वाले जिन 39 बच्चों से भेट की वे स्कूल से विमुख हो गये हैं और अधिकतर बच्चे परीक्षा भी नहीं दे पाये।

पलायन का अर्थशास्त्र

पलायन करने वाले मजदूरों की मजदूरी भुगतान के तरीके में प्रमुख बदलाव हुआ है। पहले दैनिक मजदूरी भुगतान की जगह अब मजदूरों को ठेके पर काम दिया जा रहा है। यह एक प्रकार का भाव तोल है। नियोक्ता किसान मजदूरों को अपने खेत का क्षेत्रफल या बोए गये बीज की मात्रा की सूचना देता है। इस पर मजदूर अपना दर बताते हैं जो अनाज की बोरियों की संख्या के रूप में होता है। उदाहरण स्वरूप 15 एकड़ के लिए 12 बोरे या 12 एकड़ के लिए 10 बोरे। इसके लिए कोई स्थापित मापदण्ड नहीं है। मजदूरों के लिए खेत के क्षेत्रफल देखकर आंकलन करना मुश्किल होता है। कई बार नियोक्ता बोए गए बीज की मात्रा के बारे में मजदूरों को गलत जानकारी देता है। क्योंकि पूरा सौदा मौखिक और आपसी विश्वास पर आधारित होता है, शोषण की संभावनाये अधिक होती है। यह नियोक्ता को दैनिक मजदूरी बाटने की झंझट से छुटकारा देता है। मजदूरी का भुगतान अनाज के रूप में किया जाता है। अंतिम भुगतान काम की समाप्ति पर ही किया जाता है। पलायन के दौरान मजदूर अपनी हर आवश्यकता जैसे दैनिक उपयोग की चीजे, तम्बाकू, या सब्जियां या इलाज के लिए पूरी तरह नियोक्ता पर निर्भर रहता है। अंतिम भुगतान के समय इस तरह दी गई पूरी राशि काट ली जाती है। नियोक्ता पहले ही मजदूरों के गांव में पहुंच जाते हैं और उन्हें अग्रिम राशि दे आते हैं या और कोई सहायता कर देते हैं और इस प्रकार मजदूर पलायन करने को बाध्य हो जाता है। कई नियोक्ता ट्रेक्टरों के द्वारा मजदूरों का परिवहन करते हैं। इससे मापदण्ड निर्धारित करना मुश्किल होता है। यह मजदूरों की संख्या पर भी निर्भर नहीं करता क्योंकि ठेके की एक निश्चित राशि तय कर ली जाती है। अतः जब मजदूरों की संख्या बढ़ती है तो प्रतिव्यक्ति मजदूरी घट जाती है। जब हमने 407 सर्वेक्षित पलायन पर आये मजदूरों से ठेके का दर जाना तो पलायन का आर्थिक परिदृश्य कुछ ऐसा नजर आया :

- सर्वेक्षित मजदूर 407
- अनाज के बोरों के रूप में ठेके की राशि 262 बोरे (26200 किलों)
- कटाई के लिए खेतों का क्षेत्रफल 362 एकड़
- प्रति एकड़ प्राप्त होने वाली बोरी 0.72 बोरी (72.4 किलो)
- प्रति मजदूर बोरी का अंश 0.64 बोरी (64.4 किलो)
- मजदूरों का प्राप्त होने वाले अनाज का बाजार मूल्य 7 रूपये प्रतिकिलो दर से 451 रूपये
- औसत 15 मानवदिवस के आधार पर दैनिक मजदूरी 30 रूपये प्रतिदिन

ठेके के दौरान काम मात्र फसल कटाई तक सीमित नहीं रहता पर इसके साथ थ्रेसर से गेहूं निकालना, भूसे को भण्डारों में रखना, खाद को ट्राली पर चढ़ाना और खेतों में खाद डालना जैसे काम भी करने पड़ते हैं। जब तक ये काम पूरे नही हो जाते हैं तब तक अंतिम हिसाब नहीं किया जाता। कटाई के अलावा किये जाने वाले पूरक कार्यो को मजदूरी दर निर्धारण में सम्मिलित नहीं किया जाता है। पलायन पर गये परिवार ये सारे काम किये बिना नहीं लौट सकते।

अपने दैनिक खाने के लिए अनाज के लिए भी परिवार पूरी तरह नियोक्ता पर निर्भर होते हैं। इस तरह खाने के लिए दिये जाने वाला अनाज भी अंतिम हिसाब में काट लिया जाता है। इसका अर्थशास्त्र कुछ ऐसा हैः

- एक वयस्क पलायित मजदूर की प्रतिदिन अनाज खपत 1किलो 100ग्राम
- प्रतिदिन खपत अनाज का बाजार मूल्य 7 रूपये किलो से 7 रूपये 70 पैसे
- प्रति बच्चे प्रतिदिन अनाज खपत 500 ग्राम
- प्रति बच्चे प्रतिदिन अनाज खपत का बाजार मूल्य 3रूपये 50 पैसे

यदि हम यह माने कि दो वयस्क काम करते हैं और उन पर दो बच्चे निर्भर होते हैं तो भोजन पर दैनिक व्यय लगभग 21 रूपये प्रतिदिन होता है। यह उनकी मजदूरी का 68 प्रतिशत है जो सिर्फ भूख मिटाने में खर्च हो जाता है। परिवार के पास मात्र 10 रूपये (32 प्रतिशत) बचते है जिसे वे अपने दैनिक उपयोग की चीजों पर खर्च करते हैं। यदि हम इसे सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम मजदूरी से तुलना करे तो यह उसका मात्र 52 प्रतिशत है। जब रोजगार गारंटी योजना लागू हो और इसमें सबसे गरीब जिले सम्मिलित हो (खण्डवा भी) तो पलायन को रोक पाने की असक्षमता को लोगों के काम के अधिकार से विमुख किये जाने के अलावा किसी और रूप में परिभाषित नहीं किया जा सकता।

पलायन एक खतरानाक कुचक्र है। नियोक्ता मजदूरों को आसानी से अग्रिम राशि या ऋण दे देते हैं। शादी हो या त्यौहार या बिमारी का इलाज मजदूर नियोक्ता से आसानी से कर्जा ले सकता है और अधिकतर मामलों में बिना ब्याज के। यह स्वतः मजदूरों को पलायन पर लोटने के लिए कृतज्ञ कर देता है। यदि कोई कर्जा चुका नहीं पाता है अथवा नहीं लोट पाता है तो वह चक्रवर्ति ब्याज के भवर में फस जाता है। पलायन भूख से प्रेरित होता है न कि यह एक परंपरा है जैसा कई लोग मानते हैं।

सर्वे के दौरान सभी परिवारों ने बताया कि यदि गांव में ही काम उपलब्ध होता तो वे यहां नहीं आते। महिलाओं ने तो इस पर काफी भावनात्मक जोर दिया। अधिकतर परिवारों के पास जॉब कार्ड तो थे किन्तु रोजगार नहीं।

पलायन पर आये परिवारों की रहन–सहन की स्थिति :

जिन कठिनतम परिस्थितियों में पलायन पर आये परिवार रहते हैं वह किसी भी तरह संविधान में दर्शाये जीने के अधिकार और सम्मान पूर्वक जीवन का अधिकार सुनिश्चित नहीं करते। लोग खेतों या उसके आसपास पेड़ो के नीचे डेरा डालते हैं। वहां न छत होती है न दीवार। कपड़े और बिस्तर पेड़ों की डालों पर लटके रहते हैं। टहनियों से रस्सी बांधकर छोटे बच्चों के झूले बनाये जाते हैं। चल फिर सकने वाले बच्चे दिनभर कड़ी धूप में भटकते है या पानी और जलाउ लकडी की तलाश में फिरते रहते हैं और इस प्रकार उपयुक्त देखरेख से उपेक्षित होते हैं। अधिकतर परिवार रोटी और चटनी खाकर दिन गुजारते हैं और कभी कभार दाल या सब्जी खा पाते हैं। अपर्याप्त भोजन, पोषण, स्वास्थ्य और देखरेख के कारण कुपोषण तेजी से बढ़ता है। परिवार रात को भी अधेरे में रहते हैं। सांप बिछुओं का डर उन्हे सताता है। क्योंकि भूसा और पूले अत्यंत ज्वलनशील होते हैं। परिवार तेल का दिया भी नही जला सकते। पलायन पर

आये मजदूरों के लिए इसी प्रकार की बुनियादी सुविधा प्रदान करने के लिए स्थानीय प्रशासन के प्रयासों के संकेत नहीं मिलते। स्कूलों, आंगनवाड़ियों, स्वास्थ्य केन्द्रों या उचित मूल्य की दुकानों तक उनकी पहुंच नहीं होती। पलायन का भयंकर चेहरा इससे नजर आता है कि लोग अपने साथ पालतू जानवरों को भी लाने के लिए विवश है।

सुन्दरदेव गांव की फूलवती रमेश 15 दिनों पहले रोलगांव में पलायन पर आयी है। वह अपने समूह के साथ पेड के नीचे रहती है। उसे पास की नदी से पानी पीना पड़ता है। स्वास्थ्य कार्यकर्ता हफ्ते में एक बार आती है। फूलवती की गर्भावस्था का आठवा महीना चल रहा है। काम के दौरान उसे कई घण्टों रसायनिक खाद को सांस के साथ लेना पड़ता है। यह कल्पना ही की जा सकती है कि इसका कितना प्रभाव उस पर और उसके पेट में पल रहे बच्चे पर पड़ता है।

कार्य स्थल पर प्राथमिक उपचार की कोई सुविधा नहीं होती और कई मजदूर अपने ही हसियें से चोट ग्रस्त हो जाते हैं। क्योंकि हसियें लोहे से बने होते हैं धर्नुवात का खतरा अधिक रहता है। बड़ी दुर्घटनायें जैसे शरीर के अंगों के कट जाने की स्थिति में नियोक्ता इलाज करवा देते है और छोटा मोटा मुआवजा देकर मुक्त हो जाते हैं। इसमें राज्य प्रशासन की कोई भूमिका नजर नहीं आती।

प्रमुख निष्कर्ष –

1. खालवा ब्लॉक से पलायन हुआ है और इसका सर्वागिण दर 3.01 प्रतिशत है। अनुमानित 4000 लोगों ने पलायन किया है जिसमें पुरूष पलायन दर 51.6 प्रतिशत और महिला पलायन दर 48.4 प्रतिशत है।
2. बच्चों ने भी पलायन किया है और 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चों का पलायन दर 6.5 प्रतिशत है।
3. 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चों में 37 प्रतिशत बच्चों की कुंपोषित होने की संभावना है और गंभीर कुपोषण 20 प्रतिशत तक हो सकता है।
4. स्कूल जाने वाले बच्चें शिक्षा से उपेक्षित हो गये हैं।
5. दैनिक मजदूरी 30 रूपये प्रतिदिन के लगभग है जो निर्धारित न्यूनतम मजदूरी का मात्र 52 प्रतिशत है।
6. कमाई जाने वाली मजदूरी का 68 प्रतिशत मात्र भोजन पर व्यय हो जाता है।
7. कार्य स्थल पर सुविधायें नगण्य है और लोग अत्यंत अमानविय परिस्थिति में जीते हैं।
8. महिलाओं के लिए एकांत और स्वास्थ्य सुविधा नहीं के बराबर है। गर्भवती और धात्री महिलाओं की समस्या और अधिक है।
9. पलायन पर आये मजदूरो की कोई सामाजिक सुरक्षा नहीं है।
10. मजदूरों को मजदूरी दर में शोषण का शिकार होना पड़ता है।
11. भूख पलायन के लिए सबसे अहम कारण नजर आती है।
12. जॉब कार्ड होने के बावजूद गांव में काम न मिल पाना इन पलायन पर आये मजदूरों के काम के अधिकारों का हनन है। इससे उनकी रोजगार गारंटी छिनी है।
13. स्थानीय प्रशासन पलायन पर आये मजदूरों के कल्याण के प्रति उदासीन नजर आता है।

हमारी मांगे :

- खण्डवा प्रशासन तत्तकाल मजदूरो को वापस बुलाने का प्रबंध करे।
- मजदूर को वापस लाने का खर्च प्रशासन वहन करे।
- मजदूरों को कम से कम एक माह का बेरोजगारी भत्ता प्रदान किया जाए।

- वापस आते ही लोगों को रोजगार गांरटी योजना के तहत् मजदूरी व अन्य सुविधाये उपलब्ध कराई जावे।
- विस्तृत पलायन और इससे हुई परिवारों को परेशानी तथा इस कारण उनसे छिनी गई रोजगार गारंटी की जिम्मेदारी तय की जायें।
- जिले के अन्य स्थानों से भी इस तरह का दुखदायी पलायन रोकने का प्रयास किया जाए।
- हरदा प्रशासन के पास पलायन पर आये मजदूरों की सूचना रखना अनिवार्य किया जावें।
- हरदा जिला प्रशासन निर्देश जारी करे कि हर नियोक्ता पलायन पर लाये मजदूरों की सूचना दे और उनके लिए कार्यस्थल पर तथा अन्य सामाजिक सुरक्षा सुविधायें उपलब्ध कराई जावे।
- पलायन से वापस आने पर कुपोषित बच्चों और गर्भवर्ती धात्री महिलाओं को समुचित स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध कराई जावे।

कुपोषण + बीमारी + प्रशासनिक अव्यवस्था = गरीब की मौत

नरेन्द्र शर्मा

गरीब की मौत का समीकरण बहुत स्पष्ट और देखा–भाला है, (देखने से मतलब है कि लगभग सभी, खासकर सरकार के छोटे–बड़े सभी अधिकारी कर्मचारियों को मालूम होता है कि अमुक मौसम/माह में, अमुक गाँव के अमुक बच्चे, बड़े–बूढ़े मौत के षिकार हो सकते हैं) मौतों के प्रति ''संवेदना'' होना एक बात है और संवदेनषील होना दूसरी बात। लेकिन यह बात महिला बाल विकास विभाग एवं लोक स्वास्थ्य विभाग पर लागू नहीं होती, इन विभागों की तमाम संवेदनषीलता और संवदेनाऐं मानों समाप्त ही हो गई हैं। यदि प्रदेष के केवल एक छोटे आमड़े को ही देखे तो प्रदेष में 0–5 वर्ष के कुपोषित बच्चों की संख्या 33.48 लाख है जो कि कुल बच्चों की जनसंख्या का लगभग 50 प्रतिषत हिस्सा है। इसका मतलब यह हुआ कि आज से 15–20 वर्ष बाद यह प्रदेष आधा बीमार होगा और इन साढ़े तैंतीस लाख युवाओं का भविष्य अंधकारमय। चूंकि चिकित्सा विज्ञान भी मानता है कि कुपोषण बच्चे के मानसिक, शारीरिक विकास में बाधक होता है।

विशेषज्ञ बताते हैं कि 2 प्रतिषत अति कुपोषित बच्चे मौत का षिकार हो सकते हैं। यह बात तमाम सफेद पोषों और आला अधिकारियों को पता है। ये सारे आंकड़े सरकारी विभाग के ही हैं जो यह बता रहें हैं कि ग्रेड 3 व ग्रेड 4 स्तर के गंभीर कुपोषित बच्चों की संख्या लगभग 80000 है। इससे यह बात साफ हुई कि 80000 बच्चों की जान पर बनी है, इन बच्चों में से इस नोट को लिखते समय तक कितने काल का ग्रास बन चुके होंगे, यह बात कहना अभी मुष्किल है, किन्तु अनुमान लगाया जा सकता है एक छोटे उदाहरण से। और ये उदाहरण पूरे प्रदेष में आला अधिकारियों से लेकर नेताओं तक की संवेदना और संवेदनषीलता की पोल खोलकर रख देगा।

शिवपुरी जिले में आंगनवाड़ी में कुल दर्ज बच्चें 190396 है, जिनमें कुपोषित बच्चें 101344 है, गंभीर कुपोषित बच्चों की कुल संख्या 4531 है। इन बच्चों की खैरख्वाह महिला बाल विकास विभाग के पास आंगनवाड़ी केन्द्रों की ही संख्या पर्याप्त नहीं है, तत्कालीन आयुक्त श्री एस.आर. मोहन्ती ने वर्ष 2005 जून में 300450 अस्थाई आंगवाड़ी केन्द्रों की स्वीकृति प्रदान की थी। खासकर उन स्थानों के लिए जहाँ सहरिया आदिम जनजाति के लोग विकास करते हैं और सर्वाधिक कुपोषण, एनीमिया के षिकार हैं। किन्तु इन आदेषों पर अमल के नाम पर षिषु षिक्षा केन्द्रों की मास्टरनी के माध्यम से दलिया/पंजीरी वितरण होता है और जिन गावों में भिक्षु षिक्षा केन्द्र की षिक्षिका नहीं है वह आंगनवाड़ी कार्यकर्ता स्वयं जाकर दलिया वितरण करती हैं। विभाग के मुताबिक सात दिन में एक बार ये आंगनवाड़ी अस्थाई केन्द्र का पोषण आहार लेकर जाती है और पूरे सात दिनों का पोषण में एक बार में ही बच्चों को दे आती है। अन्य कई प्रकार से से भी कुपोषण मिटाने का अभियान चल रहा है, जबकि ये बात सभी स्वीकारेंगे कि जहाँ अस्थाई केन्द्रों की सिफारिष की गई है उन स्थानों में ही कुपोषण सर्वाधिक है क्योंकि वहाँ आंगनवाड़ी थी ही नहीं और वहाँ अब भी ''सात दिन में एक बार'' दलिया वितरण होता है। स्थिति का आंकलन स्वतः ही किया जा सकता है।

यदि आंगनवाड़ी केन्द्रों पर पोषण आहार की आवक का रिकार्ड देखेंगे तो संवेदनषील व्यक्ति बेहोष होने की स्थिति में आ जायेगा। विभाग के तथ्यों के अनुसार कुल 45.29 प्रतिषत पोषण आहार की ही आपूर्ति (सप्लाई) जिलें में हुई है यानि आधे से भी कम। यह बात जगजाहिर है कि आधे की आपूर्ति में वितरण कितना हुआ होगा। पहले तो पोषण आहार आंगनवाड़ियों के केन्द्रों या घरों में (कोलारस विकास खण्ड के बूढ़ीराई गांव में आंगनवाड़ी केन्द्र होते हुए भी दलिया उसके घर में रहता है और वितरण की स्थिति एकदम षून्य के बराबर है, रिकार्ड आप तब देख पायेंगे जब आंगनवाड़ी केन्द्र की कार्यकर्ता अपने पति से स्वीकृति ले लेगी। कुछ आंगवाड़ी कार्यकर्ता तो यहाँ तक कह देती हैं कि विभाग की ओर से अपने रिकार्ड दिखाने की मनाही है।)होता है। यहाँ यह उल्लेख करना आवष्यक है कि अधिकांष आंगनवाड़ी कार्यकर्ता उच्च या पिछड़ा वर्ग की हैं, सहरिया समुदाय या अनुसूचित जाति की कार्यकार्ता तो ना के बराबर

या अपेक्षाकृत बहुत कम है (यह रिकार्ड विभागी से मांगने पर हमें वेबसाइड' का पता दे दिया गया, जबकि यह वेबसाइट खुली ही नहीं) ऐसी स्थिति में जो आधा अधूरा पहुँचा भी है कैसे सुनिष्चित किया जाऐ कि वह सबसे ज्यादा गरीब कुपोषित सहरिया जनजाति के बच्चों, महिलाओं को ही मिलेगा। आंकड़े लेकर बहुत आषंकायें इसलिए हैं क्योंकि तकरीबन हर सहराने (सहरिया गाँव) में दलिया/पंजीरी न बंटने की पुष्टि हुई है और चाहे वह भारी गांव हो या बेरखेड़ी, चकरा गांव की बात करें या भड़ोता की, आप 0–5 वर्ष के बच्चों को लाईन में खड़ा कर स्थिति स्वयं देख लें, आप औसतर 80 प्रतिषत बच्चों के पेट बढ़े हुए, टांगे बाहें कमजोर और चेहरे पर उदासी साफ देखेंगे। यह बात केवल इन्हीं गावों की होती तो किसी एक को दोष दे देते, खतियाघना, पिछोर, कोलारस, पोहरी, षिवपुरी (इन विकासखण्डों में तो हमारा सीधा दखल है) हालात बद से बदतर है। इसलिए ऐसी संवेदना और संवदेनषीलता को धिक्कार है जो लोगों की जान से खेलती हों।

इनके अलावा एक नजारा और है जो पूरी स्थिति में मानों आग में घी का काम करता है। वह है स्वास्थ्य विभाग और इनमें मैदानी कार्यकर्ता (एएनएम व एमपीडब्ल्यू)। कुपोषण से पैदा होती बीमारियों से जान बचाने के लिए स्वास्थ्य विभाग की जवाबदेही भी तय हुई उनके लिए विभिन्न प्रक्रियाऐं जैसे एमसीपी कार्ड (mother and child protection card) प्रत्येक हितग्राही के पास रखे गये और कार्यकताओं की जवाबदेही तयकी गयी कि एएनएम व आंगनवाड़ी आपसी कार्यनिर्भर से हितग्राही माँ, गर्भवती महिला, बच्चे का वजन लेकर, स्वास्थ्य की जाँच कर इस कार्ड को भरेगी और अपने दस्तखत करेगी। गाँव–गाँव कार्ड तो मिल जायेंगे किन्तु दस्तखत नहीं, केवल <u>कोरे/खाली''</u> । सेंसई, चकरा, माटी, डोडयाई, रिजोदा, अनुपुरा, भड़ौता विकास खण्ड को लारस के ऐसे गाँव हैं जहाँ एएनएम कभी कभार दिखाई तो देती है किन्तु क्या करती हैं यह तो विभाग या वह स्वयं ही जानती है। इनमें से सेंसई तो एएनएम का केन्द्र है किन्तु गर्भवती महिलाओं का वजन उनके एमपी कार्ड में शायद ही किसी का भरा हो। इन्हीं गावों में चेचक का प्रकोप है, अनुपूरा के अलावा तो बीएमओ के पास जानकारी तक नहीं है कि कहाँ चेचक है या कोई अन्य बीमारी। षिवपुरी जिले का यह कोलारस विकास खण्ड जबकि धवन्तरी विकास खण्ड के नाम से चिन्हित हुआ है। यहाँ स्वास्थ्य की तमाम सुविधाओं के साथ–साथ मरीजों को बेहतर सुविधाऐं प्रदान करने की आपेक्षा की जाती है।

कोलारस में विकास खण्ड स्तर पर बाल षक्ति योजना के अंतर्गत सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र के साथ–साथ 10 बिस्तरों का कुपोषण से बचाव केन्द्र स्वयं सेवी संस्थाओं की मदद से शुरू किया गया है उस केन्द्र में भर्ती बच्चों को बीएमओ साहब यहाँ रोककर इलाज करने से ज्यादा अच्छा मानते हैं षिवपुरी जिला चिकित्सालय रैफर कर देना, और कहते है जोखिम क्यों उठायें। उनके व्यवहार और उनके इलाज से गरीब लोगों को परेषानी ही होती है।